जिनोक्तसूत्रके अर्थ ग्रहण करावनेहारा कोई रहा नाहीं तातैं सत्य जिनमतका तो अभाव भया तव धर्म तैं परान्मुख भये तव कोई कोई गृहस्थ सुवुद्धि संस्कृत प्राकृतका वेत्ता भया ताकरि जिनसूत्रन को अवगाहा तव ऐसा प्रतिभासता भया जो सूत्रके अनुसार एक भी श्रद्धान ज्ञान आचरणनकी प्रवृत्ति न करैं हैं अर वहुत काल गया मिथ्या श्रद्धान ज्ञान आचरणकी प्रवृत्तिकौं, ताकरि अतिगाढ़-तानैं प्राप्त भई, तातैं **मुखकरि कही मानैं नहीं** तव जीवनका अक-ल्याण होता जानि करुणावुद्धिकरि देशभाषाविषैं शास्त्र रचना करी, तव केई सुवुद्धीनके सांचा वोध भया, वहुरि अव इस अवसर विषैं ज्ञानकी वा शक्तिकी ऐसी हीनता भई जो भाषा शास्त्रनतैं भी ज्ञान कर सकैं नाहीं, तातैं तिन महंत शास्त्रनितैं प्रयोजनभूत-वस्तु काढिर छोटे प्रकरण करि एकत्र कीजिये है, तातैं ऐसे अव-सर विषैं सम्यक्ज्ञानके कारण भाषाशास्त्र ही हैं।"

परंतु फिर भी वह परपदार्थोंके विपरीत परिणमनसे कभी दिल-गीर अथवा दुखी नहीं होते थे, किंतु यह समझकर संतोष धारण कर लेते थे कि इनका परिणमन मेरे आधीन नहीं ये अपने परि-णमनके आपही कर्त्ता धर्त्ता हैं अतएव मैं इनके परिणमनका कर्त्ता धर्त्ता नहीं हूँ। जीव भूलसे परद्रव्य एवं पर परिणतिको अपना सम-झने लगता है, जो दुःखका मूल कारण है।

आपकी सभी रचनायें आध्यात्मिक हैं उनकी भाषा ढुंढारी मिश्रित जयपुरी है जो व्रजभाषाकी पुटसे अलंकृत है। भाषामें बहुत कुछ परिमार्जन अथवा संशोधनकी आवश्यक्ता थी, परंतु ग्रंथकार की कृतिको उन्हींके शब्दोंमें अक्षुण्ण बनाये रखनेके उद्देश्यसे उसमें अपनी ओरसे कोई संशोधन मूलमें नहीं किया गया, किन्तु विषय की दृष्टिसे अधिकारोंका वर्गीकरण कर दिया गया है जिससे पाठकों को विषय समझनेमें सुविधा हो सके। साथ ही ग्रंथगत पद्यों तथा उक्तं च वाक्योंका अर्थ नीचे फुट नोटमें दे दिया गया है, और वहां यह भी संकेत कर दिया गया है कि वह किस ग्रन्थका वाक्य है। तथा कमी पूर्ति व त्रुटित शब्दोंको ( ) [ ] इस प्रकारके कोष्टकोंमें दे दिया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थका नाम चिद्विलास है। इसमें चैतन्यके विलास का वर्णन है। आत्मा कैसे चैतन्यभावको अपनाता हुआ विभावोंसे मुक्त हो सकता है और स्वरूपमें कैसे निष्ठ रहता है? साथ ही द्रव्य-गुण आदि का भी स्पष्ट विवेचन किया गया है, आत्माकी शक्तियोंका भी दिग्दर्शन कराया है। इससे ग्रन्थ मुमुक्षुजनोंके लिये बहुत उपयोगी होगया है।

ग्रन्थकी प्रेस कापी दो प्रतियोंके आधार पर एक शास्त्र भंडार कूंचा सेठ दिल्लीकी प्रति और दूसरी बा० नेमीचन्दजी

पाटनी मदनगंजकी प्रति पर से कीगई है। प्रेस कापी और संपादन करते हुए बहुत कुछ सावधानी रक्खी गई है, फिर भी दृष्टि दोषसे कुछ अशुद्धियां रह गई हों तो पाठक सूचित करनेकी कृपा करें, जिससे अगले संस्करणमें उनका सुधार हो सके।

बा० नेमीचन्दजी पाटनी मदनगंजके सौजन्यसे ही यह चिद्विलास ग्रन्थ प्रकाशमें आ रहा है। आप श्रीमान् होते हुए भी विद्वान् हैं और अध्यात्मरसके रसिक हैं, और अप्रकाशित साहित्यके प्रकाशनकी रुचि रखते हैं। उसीके फल स्वरूप यह ग्रन्थ पाठकों की सेवामें समुपस्थित है। मैं पाटनीजी तथा बा० पन्नालालजी अग्रवाल, देहलीका बहुत आभारी हूँ जिनके प्रयत्नसे ग्रन्थकी प्रति प्राप्त हो सकी।

वीर सेवा मंदिर, सरसावा
ता० ८-७-४८

परमानंद जैन सांधेलीय

सत्स्वरूपवस्तु, स्वतः सिद्ध एवं स्वसहाय है।

तत्वं सल्लक्षणिकं सन्मात्रं वा यतः स्वतः सिद्ध

तस्मादनादि निधनं स्वसहायं निर्विकल्पं च ॥

(पञ्चाध्यायी अ० १ गा० ८)

अर्थात् वस्तु का सामान्य लक्षण 'सत्' लक्षण वाला होनेसे 'सत् मात्र' तथा 'स्वतः सिद्ध' है और इसीलिये वो 'अनादि निधन' एवं 'स्वसहाय' और 'निर्विकल्प' है। इससे यह सिद्ध होता है कि किसी भी वस्तुका कभी भी नाश नहीं होता तथा 'स्वसहाय' यानी अपने कायम रहने में कोई दूसरेकी सहायता आधार एवं हेतुपने आदिकी भी अपेक्षा नहीं रखता, इसलिये हरएक वस्तु यानी जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश एवं काल ये छहों वस्तु, सत् स्वरूप स्वतःसिद्ध हैं इनका कभी भी कोई भी नाश नहीं कर सकता और उत्पन्न भी नहीं कर सकता। इसलिये कोई भी इस छह द्रव्यमय लोकका कर्ता (उत्पन्न करने वाला) एवं हर्ता (नाश करने वाला) नहीं हो सकता, इसी प्रकार हरएक वस्तु अपने कायम बने रहने में कोईकी भी सहायता आदिकी भी अपेक्षा नहीं रखती इससे यह सारांश निकला कि भूतार्थनय से छहों द्रव्यों में से कोई भी द्रव्य कभी भी किसी भी द्रव्यका किसी भी प्रकारसे कर्ता हर्ता नहीं है तथा कोई भी द्रव्य किसीभी द्रव्यको किसी प्रकारकी सहायता आदि भी नहीं दे सकता।

गुणपर्यायवान् द्रव्य है।

"गुणपर्ययवद्द्रव्यं" सूत्र के अनुसार गुण और पर्याय वाला द्रव्य होता है यानी अनंतगुणों का पिंड सो ही द्रव्य है; द्रव्य के पूरे भागमें और सर्व अवस्थाओंमें जो व्यापें, वे गुण हैं; और हर एक गुणकी समय २ में होने वाली अवस्थाएँ, वे पर्याय हैं। इस प्रकार कहनेमें तीन प्रकार आने पर भी ये तीनों अभेदपने से एक ही हैं जैसे अनादि अनंत पर्यायों (भूत में हो चुकी जितनी अवस्थाएँ, भविष्यमें होने वाली अवस्थाएं तथा वर्तमान वर्तती अवस्थाओं) का भंडार हर एक गुण है और ऐसे अनंतगुणों का पिंड सो ही द्रव्य है; इस प्रकार द्रव्यका परिणमन सो ही गुणका परिणमन और गुणका सो ही द्रव्यका, इसमें भेद कहने में आने पर भी यथार्थतः भेद नहीं है। इस प्रकार हरएक द्रव्य समय २ अपनी भावी अवस्थाओंको वर्तमान रूप करता हुआ तथा वर्तमान को भूतमें मिलाता हुवा स्वयं पलटते २ अनादि अनंत सत्‌रूप कायम रहता है। 'द्रव्य पलटता है' कहने में ही अनंतगुण समय २ पलटते हैं 'यह आ ही जाता है।

सत्‌का सत्‌पना उत्पाद व्यय ध्रौव्य से है।

इस प्रकार हरएक वस्तु यथार्थ तया एक समयमें ही पूर्व अवस्था को त्याग (व्यय) कर, उत्तर अवस्था को प्राप्त (उत्पाद) करती हुई, वस्तुपनेंसे त्रिकाल कायम (ध्रुव) रहती है, यथा "उत्पादव्ययध्रौव्य युक्तं सत्" अर्थात् 'सत्' उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक ही है; जैसे सुवर्ण

जिसमें कुछ चांदी मिली हुई हो ऐसे सुवर्णके पीलेपनको लीजिये तो मिश्रित अवस्थामे उसका पीलागुण फीका था, जब सुवर्णकार ने उसको अग्निमें तपाया तो क्रमशः उस पीले गुण की फीकेपने वाली अवस्थाका अभाव हो होकर क्रमशः पीले गुण की वृद्धि वाली अवस्थाका उत्पाद होता गया जो अंतमें १०० टन्चके पूर्ण पीलेपनकी अवस्थाको प्राप्त होगया, अब दृष्टांतके किसी भी एक समयको लीजिये तो एक ही समयमें जितने अंश चांदीकी सफेदी-पनका अभाव होरहा है उस ही एक समयमें उतने ही अंशमें पी-लेपनकी वृद्धि होरही है और उस ही एक समयमें पीले गुणवाला सुवर्ण तो वही मौजूद है जो पहले था। इसही प्रकार निश्चय नयसे हरएक वस्तु(द्रव्य)अपने हरएक गुण सहित एक २ समयमें पूर्व अवस्था का व्यय कर उत्तर अवस्था को प्राप्त करती हुई वस्तुपने से त्रिकाल एकरूप कायम बनी रहती है। इसलिये सिद्ध हुआ कि सत्‌रूप वस्तुमात्रका स्वभाव ही हर समय २ उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक परिणामनशील ही है यही "वस्तुस्वभाव" है।

वस्तु परिणमनशील क्यों है?

यहां कोई प्रश्न करे, कि वस्तुको परिणामनशील ही क्यों माना जावे? उसका उत्तर यह है कि, स्थूल दृष्टि से भी देखो तो साक्षात् यही देखनेमें आता है जैसे कोई मनुष्य कभी रोता है कभी हंसता है, कभी क्रोधी होता है कभी हर्षित होता है, कुछ समय पहले बालक था वर्तमानमें युवा है आदि२ अवस्थाओंको

पलटते हुवे भी वह मनुष्य तो वही रहता है अवस्थायें पलटती है पर मनुष्य नवीन नहीं होजाता है इसलिये युक्ति, आगम, अनुमान एवं प्रत्यक्ष प्रमाणसे वस्तुकी उपरोक्त प्रकार ही सिद्धि है अन्यथा हो ही नहीं सकती, यह त्रैकालिक नियम है कि "जो 'है' उसका कभी नाश नहीं हो सकता" और "जो 'नहीं है' उसकी कभी उत्पत्ती नहीं हो सकती" मात्र "जो 'है' वही अनेक २ अवस्थाएँ पलटता रहता है।"

वस्तु "स्वतः" परिणमनशील है।

फिर यहां कोई कहे कि, वस्तु परिणमनशील तो है पर उसका उत्पाद, व्यय पर की सहायता की अपेक्षा तो रखता है ?

उत्तर:—नहीं, यह मान्यता मिथ्या है, क्योंकि वस्तु हर समय अपने वर्तमान में ही रहती है (अर्थात् हर समय कोई न कोई अवस्था (पर्याय) में ही वस्तु पाई जाती है) इसलिये वस्तुकी कोई भी अवस्था अगर "पर सहाय" एवं "परतः सिद्ध" मानी जावे तो वस्तु त्रिकालमें भी "स्वसहाय" एवं "स्वतः सिद्ध" नहीं रह सकती; इसलिये वस्तुकी हरएक अवस्था "स्वतः सिद्ध" एवं "स्वसहाय" है। कहा भी है कि:—

वस्त्वस्ति स्वतः सिद्धं यथा तथा तत्स्वतश्च परिणामि
तस्मादुत्पादस्थितिभंगमयं तत् सदेतदिह नियमात्

(पञ्चाध्यायी अ० १ गा० ८९)

अर्थ—जैसे वस्तु स्वतः सिद्ध" है वैसे ही वह "स्वतः परिणामन शील" भी है, इसलियें यहां पर यह सत् नियम से उत्पाद व्यय और ध्रौव्य स्वरूप है। इस प्रकार किसी भी वस्तुकी कोई भी अवस्था, किसीभी समय, परके द्वारा नहीं की जासकती, वस्तु स्वतः परिणामनशील होनेसे अपनी पर्याय यानी अपने हरएक गुण के वर्तमान (अवस्था) का वह स्वयं ही सृष्टा (रचयिता) है।

हरएक द्रव्य यानी वस्तुमें एक अगुरुलघु नामका गुण (स्वभाव) है, जिसके निमित्तसे (१) हरएक द्रव्य कोई अन्य द्रव्यमें नहीं मिल सकता, (२) उसी द्रव्यके अनंतगुण आपसमें एक दूसरेमें नहीं मिल जाते (३) कोई एक गुणकी कोई अवस्था कोई अन्य गुणकी कोई अवस्थाके साथ भी नहीं मिल जाती ऐसी हालत में अन्यद्रव्य अन्यद्रव्यकी पर्यायको कब और कैसे कर सकता है क्योंकि सब द्रव्योंमें ही अगुरुलघु गुण है।

इसलिये सिद्ध हुवा कि वस्तु एवं उसका समय२ का परिणामन "स्वतः सिद्ध" एवं "स्वसहाय" होनेसे हरएक द्रव्य स्वतंत्र रूपसे हरसमय अपने२ नियत कालमें[१] जो जो अवस्थाओं रूप परिणमना होता है उसी रूपसे क्रमबद्ध परिणामन करता ही रहता है।

यथार्थ नयसे अपने परिणामनमें किसीभी क्षेत्र, काल, संयोग, निमित्त आदिकी अपेक्षा नहीं रखता; विशेष क्या किसी एक द्रव्य का कोई एक गुण भी अन्य गुणके परिणामन की अपेक्षा नहीं रखता, यही यथार्थ वस्तुका स्वरूप है।

इस पेज की टिप्पणी प्राक्‌थन के अन्त में देखें।

वस्तुधर्म सापेक्ष कैसे ?

यहां कोई कहे कि, वस्तुधर्म सापेक्ष है, तुम निरपेक्ष कैसे कहते हो ? उत्तरः – हम वस्तुको सापेक्ष ही सिद्ध करते हैं; जैसे वस्तु 'स्वसहाय है' यह कहनेमें ही यह सिद्ध होगया है कि वस्तु परसहाय नहीं है' और जब यह कहा कि "परसहाय नहीं है" तो सहज ही यह भी सिद्ध होगया कि "पर भी कोई वस्तु अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखती है" अगर आकाशमें पुष्पके समान पर कोई वस्तु ही नहीं होती तो "परसहाय नहीं है" यह विकल्प भी उत्पन्न नहीं होता, इसलिये वस्तु धर्म सापेक्ष है, क्योंकि किसी एककी अस्ति सिद्ध करनेसे ही अन्य सबसे नास्ति की अपेक्षा आही जाती है यह वस्तुका स्वरूप है।

पर्यायका कारण स्वपर्याय ही है।

उपरोक्त कथनके अनुसार जब वस्तु स्वतः परिणामनशील है तो उसकी समय२ की पर्याय स्वतः सिद्ध एवं स्वसहाय होनेसे उसके कारण कार्यपना कुछ नहीं रहा ? उत्तर:— यथार्थतया तो वह पर्याय स्वयं ही स्वयं का कारण है और स्वयं ही स्वयं का कार्य है।

शुद्धिकी अपेक्षा भी ली जावे तो भी उसी समयकी पर्याय ही यथार्थतया स्वयं उस पर्यायकी शुद्धिका कारण है, जैसे किसी अनादि मिथ्यादृष्टि जीवको जिस समय सम्यग्दर्शन प्राप्त हुआ तो उस समयके पहले समयकी पर्यायमें तो मिथ्यादर्शन था वह

पर्याय सम्यग्दर्शनका कारण हो नहीं सकती; अगर द्रव्य, गुणको कारण कहें तो द्रव्य गुण तो पूर्व मिथ्यात्व अवस्थामें भी तथा वर्तमान सम्यक्त्व अवस्थामें भी त्रिकाल एकरूप रहे इसलिये वे द्रव्यगुण भी इसके कारण नहीं कहे जासकते इसलिये सिद्ध हुवा कि उस समयकी (पर्यायकी) उस रूप होनेकी योग्यता ही स्वयं, स्वयंके उसरूप परिणमनका कारण है। वर्तमान सम्यक्तवाली पर्यायका पूर्वकी पर्यायमें तो 'प्रागभाव' है, भविष्यकी पर्यायमें 'प्रध्वंसाभाव' है, अतः जिनमें जिसका अभाव है वे इसके कारण कैसे होसकती हैं। कोई कहे कि अन्य निमित्तरूप परद्रव्य इस पर्यायकी शुद्धि का कारण है तो परद्रव्यकी पर्यायका तो इस पर्यायमें 'अत्यंताभाव' है, जिसका 'अत्यंत ही अभाव' हो वह अभाववाली वस्तु उसका कारण कैसे कही जासकती है।

इसी प्रकार किसी एक पुद्गल परमाणुके परिणमनको लीजिये, जो पहले समय तो अनंतवे भाग हरा था और दूसरे समय अनंत गुणा लाल रूप परिणमा तो उसमें अगर पूर्व पर्याय को कारण कहो तो हरा रंग लाल रंग का कारण कैसे हो, अगर द्रव्य गुण कहो तो वे तो एक रूप थे, अगर निमित्तरूप अन्य द्रव्यको कहो तो उसका इसमें 'अत्यंताभाव' है, अगर अन्य पुद्गल स्कंध को कहो तो उसकी पर्यायका इसकी पर्याय में 'अन्योन्याभाव' है इसलिये सिद्ध होता है कि यथार्थतया उस पर्यायका कारण उस पर्याय की उस समय के उस रूप परिणमन होनेकी योग्यता ही है।

कारणको कारण कब कहा जा सकता है ?

यथार्थमें कारण को कारण जब ही कहा जा सकता है जब कि नियम से कार्य प्रगट हो। अगर कार्य प्रगट नहीं होवे तो किसको किसका कारण कहा जावे, इसलिये जिस पर्यायमें कार्य प्रगट हो रहा है उस कार्य का यथार्थ कारण नियमसे उसी पर्यायकी उस रूप परिणमन होनेकी योग्यता ही हो सकती है। इसलिये कार्य व समय, अन्य पर द्रव्यों की वर्तमान पर्यायोंमें से जो भावरूप हो (कार्य प्रगट होते समय जिसका उस कार्य से संबन्ध रूप सद्‌भाव हो) उस पर निमित्त कारणपनेका, तथा बाकीके पर द्रव्योंकी वर्तमान पर्यायों पर प्रति बंधक अभावपने रूप कारणपनेका उपचार किया जाता है।

इस प्रकार एक समय की पर्याय का कार्य प्रगट होने पर यथार्थ (निश्चय) कारण तो उस पर्यायकी उस रूप परिणमनेकी उस समयकी योग्यता ही है,२ फिर व्यवहार से उस ही समय-उस ही द्रव्य में परिणमने वाले अनन्त गुणोंकी वर्तमान अवस्थाओं पर अन्य अनंतानंत पर द्रव्यों की वर्तमान पर्यायों पर अनेक अपेक्षाओंको लेकर कारणपनेका उपचार किया जाता है इस ही से अनंतानंत सप्तभंगी सधती हैं। कारणों में उपचारपना कैसे है दृष्टांतः—
जैसे मट्टीरूप द्रव्य अपनी ढेले (पिंड) रूप अवस्था को छोड़कर घटरूप पर्याय को प्राप्त करना शुरू करता है उसके समय २ का विचार करो तो, उस मिट्टी की समय २ की पर्याय जो घटपने को प्राप्त हो रही है वह स्वयं ही उसका यथार्थ कारण (उपादान

इस पेज की टिप्पणी प्राक्कथन के अन्त में देखें।

कारण) है, और समय २ में पूर्व अवस्था के व्यय को उसका व्यवहारसे कारण कहा जाता है, कारण ? मानलो पूर्व अवस्था नाशको प्राप्त नहीं होती तो इस अवस्थाकी उत्पत्ती कैसे हो सकती थी, इस अपेक्षा कारण पनेका उपचार किया जाता है।

इसी प्रकार अन्य द्रव्योंमें लो तो, चक्र के बीच के हिस्से के पुद्गल स्कन्धों-जिन पर मिट्टी रखकर घटाकार बनायी जाती है- उनकी वर्तमान पर्यायोंपर निमित्त कारणपनेका उपचार किया जाता है। उन परमाणुओंके निमित्तपनेका चक्रके परमाणुओं की वर्तमान पर्यायोंपर और चक्रके परमाणुओंके निमित्तपनेका दंडके परमाणुओं की वर्तमान पर्यायोंपर तथा उनके कारणपनेका कुंभकार के अँगुलियोंके परमाणुओं की वर्तमान पर्यायों पर तथा उनके कारणपने (निमित्तपने) का उस कुंभकार की वर्तमानमें घड़ा करनेकी इच्छा रूप रागकी पर्याय पर उपचार करनेमें आता है, जिस समय उस मिट्टीको चक्रके वीच के पुद्गल परमाणुओं की अवस्थाऐं भावरूप निमित्त हैं उसी समय उसको अन्य समस्त द्रव्योंकी उस समयकी पर्यायें अभावरूप निमित्त हैं।

इस प्रकार उपरोक्त कारण कार्यकी उपचार श्रृंखला इतनी लम्बी होती हुई भी एक ही समय में है। इस उपचार श्रृंखला के कथनमें समय लगता है, लेकिन जिस एक समयकी पर्याय में कार्य प्रगटा है उसी समय उपरोक्त सब ही द्रव्योंकी पर्यायें एक ही समय में परिणमन कर रही हैं, कुछ समय भेद नहीं है।

कोई भी पर्याय किसी से प्रभावित नहीं होती

कोई भी द्रव्य की पर्याय कोई दूसरे द्रव्य के प्रभाव, प्रेरणा, सहायता आदिसे नहीं परिणम रही है, अगर कोई प्रकार की भी कुछ भी सहायता आदि मानों तो कारण कार्य में समय भेद भी मानना ही होगा, तथा जिस पर्याय का अस्तित्व ही नहीं हो वह, किस पर और कैसे प्रभाव डाल सकती है तथा उस पर प्रभाव पड़ भी कैसे सकता है। इसलिये किसी पर्याय पर किसी पर्याय का प्रभाव आदि मानना प्रत्यक्ष विरुद्ध होने से सर्वथा असत्यार्थ, एवं वस्तु की पराधीन मान्यता वाला होनेसे सर्वथा मिथ्या है।

उपादान रूप पर्याय जिस समय कार्य रूप परिणत होती है उसी समय अन्य पर द्रव्योंकी वर्तमान वर्तती हुई अवस्थाओ पर निमित्तपनें का उपचार आता[1] है, अगर उपादान कार्यरूप परिणत नहीं होता तो वे किसके निमित्त और कैसे कहलाते। जैसे मिट्टी ही अगर घटरूप परिणत नहीं होती तो चक्र, दंड, कुलाल, कुंभकारका हस्त, तथा उसका राग, आदि पर्यामें कोंनके निमित्त कहलातीं। यथा, "मुख्याभावे सति प्रयोजने निमित्त उपचारः प्रवर्तते" (आलापपद्धति)

इस प्रकार जहां मुख्य यानी कार्य ही नहीं हो तो वहां कोंन का, किससे, कैसे उपचार हो सकता [illegible]

[1] इस पेज की टिप्पणी [illegible] में देखें।

निश्चय नयसे रागादि भी जीव 'निरपेक्षपनें' स्वयं करता है।

कोई प्रश्न करे कि, इस प्रकारकी मान्यतामें तो जीवके विभाव रागादिकको भी स्वाभाविक मानना पड़ेगा ? उत्तर—

रागादिक जीवकी ही पर्यायमें होते हैं इसलिये जीव ही अशुद्ध निश्चय नयसे उनका कर्त्ता है। लेकिन वे हमेशा' जीवमें नहीं पाये जाते इसलिये वे जीवके त्रिकाली स्वभाव नहीं हैं, फिर भी अगर उस एक समय के पर्यायके स्वभावकी अपेक्षा लो तो उस समय मात्रकी पर्यायका स्वभाव ही रागादिरूप है। **जय धवला** पत्र ३१९ में कहा है कि— "कषाय औदयिक भाव से होती है। यह नैगमादि चार नयोंकी अपेक्षा समझना चाहिये, शब्द आदि तीनों नयोंकी अपेक्षा तो कषाय पारिणामिक भावसे होती है, क्योंकि इन नयोंमें कारणके बिना कार्य की उत्पत्ति होती है।"

उपरोक्त कथनसे सिद्ध हुआ कि विकारी पर्याय भी जीव निरपेक्षपने समय २ स्वयं करता है, कोई कर्म आदि पर वस्तु उसको रागादि नहीं करा देते, जब यह स्वयं रागादि रूप परिणमता है तो उस समय उपस्थित कर्मादिपर उदयरूप निमित्तपनेका उपचार आता है, और अगर यह विकाररूप नहीं परिणमें तो उन्हीं कर्मोंपर निर्जरा रूप निमित्तपनेका उपचार किया जाता है। कुछ जीवका विकारी होना नहीं होना कर्मादिककी पर्यायोंके परिणमन को रोक नहीं सकता, इसही विकारी पर्यायका, जब निमित्तकी

मुख्यता लेकर कथन किया जाता है तो इसको "नैमित्तिक" कह देते हैं और उपादान ही स्वयं परिणमी होनेसे इसही पर्यायको उपादानकी मुख्यतासे "उपादेय" कहा जाता है।

उपादान-निमित्त कारणपना एक समय का है।

इस प्रकार एक समय की पर्याय ही उपादान कारण है और एक समयकी पर की पर्याय को ही निमित्त कारणपना है। कोई यह माने कि मट्टी हमेशा घटरूप होनेके लिये उपादान कारण है, निमित्त मिले तब घटरूप कार्य हो जाता है तो यह बात यथार्थ नहीं है। मिट्टी को उपादान मात्र स्वभाव की अपेक्षा कह दिया जाता है जो कि एकरूप है लेकिन यथार्थतया उपादान कारण तो समय २ की मिट्टीकी स्वतंत्र योग्यता ही है। जिस समयकी जिस प्रकारके परिणमनकी मिट्टीकी योग्यता है उस ही की वह उपादान कारण है और उस समय उसी कार्यरूप परिणमन होती है, अन्य रूप नहीं। उस परिणमनके समय, उसही परिणमन के अनुकूल पर द्रव्य, स्वयं अपने परिणमन काल के अनुसार परिणमता हुआ उपस्थित रहता ही है। न तो उपादानकी पर्यायके कारण निमित्तकी पर्याय हुई है और न निमित्तके कारण उपादान की हीं; लेकिन दोनों ही अपने परिणमन काल के अनुसार परिणमती हुई, एक तो कार्यरूप होने की योग्यता लेकर, दूसरी निमित्तपनेका उपचाररूप होनेकी योग्यता लेकर एकही समय आ प्राप्त हुई हैं। इसही प्रकारके स्वतंत्ररूप संबंध विशेष का नांव ही

"निमित्त नैमित्तिक संबंध" है। इसही प्रकारकी कोई अचिंत्य विशेषता है कि जिस समय उपादान, कार्यरूप परिणमनेवाला होता है उस समय उसके अनुकूल निमित्त विश्वमें होता ही है यह एक स्वतंत्र विश्वकी व्यवस्था है।

दोनों कारणोंको मानना यथार्थ कब है

यहां कोई कहे कि शास्त्रमें तो दो कारणोंके होने पर कार्य की सिद्धि होनी कही है, तुम निमित्त कारणका कार्य तो उपादान में कुछभी मानते नहीं तब एकही कारण का मानना सिद्ध हुआ? उत्तर—नहीं, हम तो दोनों ही कारण मानते हैं; उपादान कारणको शास्त्रमें अंतरङ्गकारण, निश्चयकारण, यथार्थकारण कहा है और निमित्तकारणको बहिरङ्गकारण, उपचारकारण, अयथार्थकारण कहा है। इसलिये उपादानकारण तो स्वयं कार्यरूप परिणमता है और निमित्तकारण तो बाहर ही लौटता है, उपादानमें किंचित् भी कैसे भी प्रवेश नहीं करता, मात्र सन्निधिमें सद्भावमात्र रहता है, श्री प्रवचनसारजीकी तत्वप्रदीपिका टीकामें कहा भी है, कि:—

"द्रव्यमपि समुपात्त प्राक्तनावस्थ समुचितबहिरङ्ग-
साधनसन्निधिसद्भावे विचित्रबहुतरावस्थानं"..........

(अ० २ गा० ३)

अर्थ—जिसने पूर्व अवस्था प्राप्त की हुई है ऐसा द्रव्य भी कि जो उचित बहिरंग साधनोंकी सन्निधि (निकटता, हाजरी) के सद्भावमें अनेक प्रकारकी बहुतसी अवस्थायें करता है.......

इसलिये निमित्तका उपादानमें कुछ भी, कैसे भी, कार्य माना जावे तो दोनों ही कारणोंका लोप हुआ कारण, दोनोंका 'दो पना' ही नहीं रहा, इसलिये उपादान तो अंतरङ्ग निश्चय कारण है और निमित्त मात्र बहिरङ्ग, उपचार कारण है।

उपादानके कार्यके समय निमित्तकी उपस्थिति न हो यह मानना भी मिथ्या है

लेकिन अगर कोई कहे कि उपादान कार्यरूप परिणमा तब निमित्त कोई उपस्थित नहीं था, तो यह मान्यता भी मिथ्या है कारण ऐसा असम्भव है। क्योंकि निमित्तको कहीं से लाना नहीं पड़ता तथा ये लाना चाहे तो भी ला नहीं सकता, कारण सब द्रव्योंकी समय२ की पर्यायोंका परिणमन तो बराबर हो ही रहा है, यह जब निमित्त जुटाने जावे तब तक तो असंख्यात समय चले जावेंगे तो यह निमित्तोंको कैसे जुटा सकता है, निमित्त तो हरएक पर्यायके साथ मौजूद ही है। मात्र मिथ्या भाव यह कर सकता है कि मैं निमित्तोंको जुटा सकता हूँ, मेरे जुटानेसे निमित्त आवेंगे तो ही मेरे उपादानका कार्य प्रगटेगा नहीं तो नहीं। इसप्रकार के भाव करने पर भी निमित्त तो जो आने होते हैं वे ही क्रमबद्ध आते हैं, उनमें कुछ फेरफार नहीं होता है, लेकिन ये अपने मिथ्या भावोंका फल दुःख एवं संसार परिभ्रमण पाता है।

यह तो एक अनादि अनंत स्वाभाविक विश्वकी व्यवस्था है कि, छहों द्रव्य समय२ अपने२ उपादान स्वरूपमें परिणमते रहते

हैं और छहों द्रव्योंकी ही वर्तमान पर्यायें कोई भावरूप कोई अभावरूप परस्पर एक दूसरेके लिये निमित्तपनेका उपचार कराती ही रहती हैं। जैसे केवलीके एक समयकी ज्ञानकी पर्यायमें लोका-लोक के समस्त द्रव्य अपनी समस्त पर्यायों सहित प्रकाशित हैं, ज्ञानकी पर्याय केवलीमें हुई है और समस्त द्रव्योंके प्रमेयत्व गुणकी पर्याय समस्त द्रव्योंमें हुई हैं, दोनोंके स्वतंत्र परिणमन होने पर भी, ज्ञानकी पर्यायके लिये समस्त द्रव्यों के प्रमेयत्व गुण की पर्याय निमित्त है और उनके प्रमेयत्वके परिणमनको केवलीके ज्ञानकी पर्याय निमित्त है। इसही प्रकार सब जगह समझ लेना।

न्यायशास्त्रोंके साथ उपरोक्त लेख की संधि

न्याय शास्त्रोंमें वस्तु को, अनेक स्थानों पर अनेक अपेक्षा की मुख्यता लेकर अनेक प्रकारसे सिद्ध की है जैसे—

जो सर्वथा क्षणिक ही वस्तुको मानता है उसको 'पूर्व पर्याय उत्तर पर्यायका कारण है और वस्तु दोनोंमें ध्रुव रहती है' इस प्रकार तीन काल की संधी करके, वस्तुको नित्य ठहराया है। उसी उकार कोई वस्तु को सर्वथा कूटस्थ मानता हो उसको "उत्पाद, व्ययका कारण है' यह सिद्ध करके वस्तुको परिणमन शील सिद्ध किया है आदि २।

इसी प्रकार जो कोई अद्वैत ब्रह्म मात्र ही मानता हो अन्य निमित्त वस्तुके सद्भाव को ही नहीं मानता हो उसको, 'निमित्त वस्तु जगत में है, उपादान जब कार्यरूप परिणमता है तो निमित्त होता ही है, निमित्त बिना ही उपादान में कार्य नहीं

इस पेज की टिप्पणी प्राक्कथन के अन्त में देखें।

मात्र वाद विवाद द्वारा हार-जीत करनेका नहीं है

—सारांश—

इस समस्त लेखका सारांश यह है कि हरएक द्रव्य समय २ अपने-२ उत्पादव्ययरूप परिणमन को अपने में ही निरपेक्षपने स्वतः करता ही रहता है।

कोई समय कोई द्रव्यका परिणमन रुकता नहीं, अथवा होनेवाला हो उससे कभी अन्यरूप भी कोई कर सकता नहीं, एक समय भी आगे पीछे होता नहीं, उस परिणमनका कारण कार्यपना भी और किसीमें है नहीं, तब फिर ये जीव क्यों अपने नित्य एकरूप अनादि अनंत ज्ञायक स्वभावको भूलकर, इन पर द्रव्योंमें कुछ भी कार्य करनेके मिथ्या अभिप्रायको हृदयङ्गम करता है! परद्रव्यमें कुछ भी करनेकी बुद्धि करता है तो भी परमें कुछ होता तो है नहीं, होता तो वही है जो होना होता है। कभी कोई समय इसके विकल्प अनुसार परमें परिणमन होता हुआ मेल खाजाता है तो, यह झट भरोसा कर लेता है कि मैंने किया तो हुवा, और अनेक बार अपने विकल्पके अनुसार कार्य नहीं होता है तो दुःखी तो जरूर होता है लेकिन उसपर गहराईसे विचार नहीं करता कि यह कार्य क्यों नहीं हुआ? हरएक कार्य ही, होनेके समय ही होता है, लेकिन इस जीवको भरोसा नहीं आता, कारण, इसकी संसारमें ही रुचि लगी हुई है।

इसलिये सबसे पहले "श्रद्धामें से" सब प्रकारसे निर्णय करके

इस अभिप्रायको छोड़ना चाहिये कि, परद्रव्यमें मेरा किसी भी समय, किसी भी प्रकारसे, किंचित् मात्र भी कुछ भी कार्य है व्यवहारसे भी परद्रव्यकी कोई भी अवस्थाका मैं कर्ता हर्ता अथवा व्यवस्थापक नहीं हो सकता। "मैं तो" मात्र अपने परिणामोंका ही कर्ता हूं; और मेरा अनादि अनन्त एक ज्ञान मात्र ही स्वभाव है इसलिये समयर एक ज्ञान मात्र भावका ही कर्ता हूं, अन्य कोईभी भाव होवे तो भी मैं उनका कर्ता नहीं हूं। एक ज्ञायक स्वभावमें ही निश्चल रहूं। ऐसी भावना रहे।

प्राथमिक अवस्थामें कर्तृत्व बुद्धिका अभिप्राय मात्र ही श्रद्धा में से हटता है उसके साथ ही आंशिक ज्ञायक भावमें स्थिरता भी वर्तती है और फिर जैसे २ स्थिरता बढ़ती ही जाती है वैसे २ ही वर्तनमें भी ज्ञायकपना ही बढ़ता जाता है और पूर्ण स्थिरता होने पर पूर्ण सर्वज्ञ परमात्मा हो जाता है।

इसलिये हे आत्मन्! तूं पर में फेर फार करने के निरर्थक अभिप्रायको त्याग कर अपने आपमें ही संतोष को प्राप्त हो। और प्राणी मात्र भी इस ही मार्गके पथिक बनें।

मेरे ऊपर परम उपकारी गुरु पूज्य श्री कानजी स्वामी का महान् उपकार है कि जिनके द्वारा मेरेको यथार्थ तत्वका लाभ हुआ है। अनादिकालसे जिस वस्तुको प्राप्त नहीं किया था, वह आपके प्रसाद से सहजही प्राप्त हुई है, यह मेरा परम सौभाग्य है। इस काल में सत्समागम के बराबर अन्य कोई भी लाभ नहीं है, सत्समागमसे अल्प प्रयासमें ही अनेक ग्रन्थोंका सारभूत यथार्थ तत्व सहजही धारण होजाता है। इसलिये मुमुक्षुओंको सत्समागम द्वारा सर्व प्रथम 'तत्व निर्णयरूप' अभ्यास करना अत्यन्त आवश्यक है।

आश्विन कृष्णा १ सं० २००५ नेमीचन्द पाटनी

ये टिप्पण प्राक्कथन के हैं।

पत्र ११ का टिप्पण।

१—" समस्तेष्वपि स्वावसरेषूच्चकासत्सु परिणामेषूत्तरोत्तरेष्ववसरे-
षूत्तरोत्तरपरिणामानामुदयनात्पूर्वपूर्वपरिणामाना मनुदयनात्......"

(प्रवचनसार अ० २ गा० ७ की टीका)

अर्थ—अपने २ अवसरोंमें प्रकाशते (प्रगटते) समस्त परिणामों में, पीछे पीछे के अवसरोंमें पीछे २ के परिणाम प्रगट होते होने से और पहले २ के परिणाम नहीं प्रगट होते होने से...

पत्र १४ का टिप्पण नं० १

१—" अत्राह शिष्यः। निश्चयमोक्षमार्गो निर्विकल्पः तत्काले सवि-
कल्पमोक्षमार्गो नास्ति कथं साधको भवतीति ? अत्र परिहारमाह।
भूतनैगमनयेन परंपरया भवतीति।"

(परमात्मप्रकाश अ० २ गा० १४ टीका)

अर्थ—शिष्य पूछता है; निश्चयमोक्षमार्ग निर्विकल्प है उसकाल में सविकल्पमोक्षमार्ग नहीं है, फिर भी वह साधक कैसे होता है। उसके उत्तर में कहते हैं कि, भूतनैगमनयसे परंपरा (साधक) होता है; अर्थात् उसकाल अभाव होने पर भी पूर्व में जो सविकल्पदशा थी उसपर भूतनैगमनयसे साधकपने का उपचार करने में आता है।

पत्र १४ का टिप्पण नं० २

२—पर्याय का कारण पर्यायही है। पर्याय की सत्ता, गुण बिना ही पर्यायकी कारण है, पर्याय का सूक्ष्मत्व पर्याय को कारण है। पर्याय को वीर्य पर्यायको कारण है। पर्यायका प्रदेशत्व पर्यायकी कारण है अथवा उत्पाद व्यय कारण है, काहेतें ? उत्पादव्ययसौं पर्याय जानी परै है, तातैं ये पर्याय के कारण हैं, पर्याय कार्य है। ऐसे कार्य-कारण का भेद है, सो वस्तु का सर्व रस सर्व स्वकारण-कार्य ही है। (चिद्विलास पत्र ८६)

पत्र १६ का टिप्पण।

१—“ यथा कुलालदण्डचक्रचीवरारोप्यमाणसंस्कारसन्निधौ य एव वर्धमानस्य जन्मक्षणः स एव मृत्पिण्डस्य नाशक्षणः स एव च कोटिद्वयाधिरूढस्य मृत्तिकात्वस्य स्थितिक्षणः।”

(प्रवचनसार अ० २ गा० १० की टीका।)

अर्थ—जैसे कुंभार, दण्ड, चक्र और डोरी से आरोपित संस्कार की सन्निधि के सद्भाव में (उपस्थिती में) जो रामपात्र का जन्मक्षण होता है, वही मृत्तिकापिंडका नाशक्षण होता है, और वही दोनों कोटि में रहे हुवे मिट्टीपने का स्थितिक्षण है।

पत्र २१ का टिप्पण।

१—श्री स्वामी अमृतचन्द्राचार्य ने भी समयसार गाथा ३ की टीका में ऐसा ही कहा है कि—

“ इसलिये सब ही धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल, जीव द्रव्य स्वरूप लोक में जो कुछ पदार्थ हैं वे सभी अपने द्रव्य में अंतर्मग्न हुए अपने अनन्त धर्मों को चूंबते-स्पर्शते हैं तो भी आपस में एक दूसरे को नहीं स्पर्श करते। और अत्यन्त निकट एक क्षेत्रावगाहरूप तिष्ठ रहे हैं तो भी सदाकाल निश्चय कर अपने स्वरूप से नहीं चिगते, इसीलिये विरुद्ध कार्य- (पर से नास्तिरूप कार्य) और अविरुद्ध कार्य- (स्व से अस्तिरूप कार्य) इन दोनों हेतुओं से हमेशा सब आपस में उपकार करते हैं।

शुद्धि-पत्र

त्र	लाइन	अशुद्ध पाठ	शुद्ध पाठ
६	१६	अर्थकियाकारी	अर्थक्रियाकारी
८	३	गण	गुण
८	७	पर्याय है	पर्याय (सूक्ष्म) है
९	५	मैंने	मनें
[illegible]	१९	उपेक्ष्या करि	अपेक्ष्या करि
[illegible]	१२	व्यक्तिरेक	व्यतिरेक
	२	थिरअविनाशीका	थिर, अविनाशीका
	७	द्रवै	द्रव्य
	९	पर्यायका साधक है	पर्याय साधक है
	१५	अनंत गुणमें	अनंतगुणमें
	१८	असंख्य गुणकी	असंख्यगुणकी
	१२	अगुरु लघुगुण	अगुरुलघुगुण
	१०	परिमा	परमा-
	८	चिद ध्रुवता	चिद्ध्रुवता
	२	॥१॥	ये गाथा आलाप पद्धति अ० १ की गाथा ९ है
	७	नास्ति अभाव	नास्ति-अभाव
	९	सत्वा	सत्ता
	११	"	"

पत्र	लाइन	अशुद्धपाठ	शुद्धपाठ
६५	६	नानास्व भाव	नानास्वभाव
६९	१६	पर्यायका क्षेत्र	पर्यायका द्रव्य क्षेत्र
६९	१८	प्रदेश, प्रदेश	प्रदेश-प्रदेश
७०	५	सामार्थ्यता	सामर्थ्यता
७१	१	देवादिका	देवादिक
७८	२	अवस्थिताकरे	अवस्थितताकरे
९३	६	निमती	निमित्त
९८	४	वोर	ओर
१०६	१	कृतस्न	कृत्स्न
१०६	४	निर्णयवाद,	निर्णय, वाद,
१०६	४	वितंडा।।द	वितंडा
१०६	१८	शिवमतमें	शिवमतमें (वैशेषिक मतमें)
१०७	६	जैमनीय	जैमिनीय
११६	१२	वेदवालो	वेदवावालो
११९	१७	विकल्पनैं	विकल्प नैं (नय)
१२०	१८	पर	परम
१२२	९	परमात्म	परमात्मा
१२३	४	३ (व) हां	वहां

विषयानुक्रमणिका

विषय **पृष्ठ**

विषय	पृष्ट

विषय **पृष्ठ**

श्री समन्तभद्रदेवाय नमः

श्री शाह पं० दीपचन्दजी काशलीवाल कृत

* मंगलाचरण *

अविचल ज्ञान प्रकाशमय गुणअनंत[1] के थान ।
ध्यान धरत शिव पाइये परम सिद्ध भगवान ॥१॥

याका अर्थ—परम सिद्ध परमेश्वर अनंत चिदशक्ति मंडित तिन्हें नमस्कार करि यह चिद्विलास करौं हौं ।

---

१ अविचल ज्ञान प्रकाशतैं, गुण अनंत को खानि ।
ध्यान धरै सो पाइये, परम सिद्ध भगवान ॥ —सिद्ध पूजा

प्रथम ही वस्तुविषैं द्रव्य-गुण-पर्यायका निर्णय कीजिये है, तहां द्रव्य का स्वरूप कहिये है—"द्रव्यं सत् लक्षणं"[1] यह जिनागम में कह्या है। तहां शिष्य प्रश्न करै है, हे प्रभो! 'गुण समुदायो द्रव्यं' ऐसा श्री जिन वचन है, एक सत्तामात्र में अनंत गुण की सिद्धि न होय। 'गुणपर्ययवद्द्रव्यं' [तत्त्वा० सू० ५-३८] ऐसा गुण समुदायके कहेतैं सिद्धि न होय। 'द्रव्यत्व-योगात् द्रव्यं' यह भी द्रव्य का विशेषण कीजिये, तब कहिए है, द्रव्य स्वतः सिद्ध है तो ये विशेषण झूठे भये, इनके आधीन द्रव्य नाहीं, तहां समाधान कीजिये है:—भो शिष्य! वस्तु में मुख्य गौण विवक्षा करिये, तब सत्ता की मुख्यता कियें सत्ता लक्षण द्रव्य कहिये। काहेतैं सत्ता "है" लक्षणकौं लिये है तब "है" लक्षण में गुण समुदाय गुण पर्याय, द्रव्यत्व सब आवै हैं तातैं सत्तालक्षण कहिये। दोष नाहीं, विरोध नाहीं, गुण समुदायके कहने में अगुरुलघु आया, अगुरु

1, 'दव्वं सल्लक्खणियं' पंचा० गा० १०, 'सद्द्रव्यलक्षणम्' तत्वा० सू० ५-२९।

लघु गुण में षट् गुणी वृद्धि हानि पर्याय आई, तातैं गुणसमुदाय में पर्याय सिद्धि भई। द्रव्यत्व गुण भी गुणनमें आया, तातैं गुण समुदायो द्रव्यं' यह भी विवक्षा करि प्रमाण है। 'गुणपर्ययवत्द्रव्यं' [तत्त्वा०सू० ५-३८] इस कहने में सत्ता सर्व गुण पर्याय आए, तातैं गुण पर्यायवान् द्रव्य यह भी विवक्षा करि प्रमाण है। 'द्रव्यत्वयोगात् द्रव्यं' यह भी प्रमाण है, काहेतैं, गुण पर्यायनके द्रवैं बिना द्रव्य न होय, तातैं द्रवणाद्रवत्व गुणतैं है। द्रवेतैं गुण पर्यायकों व्यापि प्रकट करै है, तातैं गुण पर्यायका प्रकट करणा द्रवत्व गुणतैं है, तातैं द्रवत्वकी विवक्षा करि 'द्रव्यत्व योगात् द्रव्यं' यह भी प्रमाण है। स्वतः सिद्ध द्रव्य यह भी प्रमाण हैं, काहेतैं—ये चारों द्रव्यके स्वतः स्वभाव हैं, अपने स्वभावरूप द्रव्य स्वतः परिणवै है। तातैं स्वतः सिद्ध कहिये। द्रव्य, गुण पर्यायकौ द्रवैं, गुण पर्याय, द्रव्यकौं द्रवैं, तब द्रव्य नाम पावै। द्रव्यार्थ (द्रव्यार्थिक) नय करि द्रव्य विशेषण है, ताके अनेक भेद हैं अभेद द्रव्यार्थ द्रव्यकौं अभेद अपने स्वभावसौं

दिखावै है—

भेद कल्पना सापेक्ष्य अशुद्ध द्रव्यार्थि [क] द्रव्यकौं भेद दिखावै हैं। शुद्ध द्रव्यार्थिक द्रव्यकौं शुद्ध दिखावै है। अन्वय द्रव्यार्थिक द्रव्यकौं गुणादिस्वभाव द्रव्य ऐसौ दिखावै है। सत्ता सापेक्ष्यद्रव्य सत्तारूप कहिये। अनंतज्ञान सापेक्ष्य द्रव्य ज्ञान सरूप [स्वरूप] कहिये। दर्शनसापेक्ष्य-द्रव्य दर्शनरूप कहिये। अनंतगुणसापेक्ष्यद्रव्य अनंत गुण रूप कहिये। इत्यादि द्रव्यके अनेक विशेषण हैं, सो द्रव्यमें नय-प्रमाणकरि साधिये।

इहां कोई प्रश्न करै है [कि] भो प्रभो ! गुण-पर्यायका पुंज द्रव्य है तो गुणके लक्षण करि गुण जान्या। पर्याय के लक्षण करि पर्याय जानी, द्रव्य तौ कोई वस्तु नहीं। ये ही कहे, सो द्रव्य, आकाश के फूल कहने मात्र है तैसैं, द्रव्यकौ सरूप कहने मात्र है। याकौ रूप (स्वरूप) तो गुण पर्याय है और नाहीं, तातैं गुण पर्याय ही हैं द्रव्यनाहीं, ताकौ समाधान—

जो स्वभाव है सो स्वभावीसौं उत्पन्न है, स्व-भावी न होय तौ स्वभाव न होय, अग्नि न होय तौ उष्ण स्वभाव न होय, सुवर्ण न होय तौ पीत-

चिकनौ-भारी स्वभाव न होय, तातैं गुणपर्याय द्रव्यके आश्रय हैं तदुक्तं तत्त्वार्थसूत्रे—"द्रव्याश्रया निर्गुणागुणाः" (५४१) इति वचनात्। द्रव्य के आश्रय गुण हैं, गुणके आश्रय गुण नाहीं, तहां दृष्टांत दीजिये है—जैसैं एक गुटिका वीस औषधि की वणी है परि (परन्तु) वे वीसही औषधि गुटिकाके आश्रय हैं, वीस औषधिका एक रस नाम पावै [किन्तु] जुदे जुदे स्वादकौं वीसही औषधि धरें हैं। तथापि गुटिका भाव कौ जो देखिये, तो तिस गुटिकासौं कोई औषधि रस जुदा नाहीं, जो रस है सो गुटिका भाव विषैं तिष्ठै है. तिन वीस औषधिरसका एक पुंज सोई गोली है। ऐसे कहने करि जो भेद विकल्पसा आवै है; परन्तु एकही समय वीस औसधिरसका भाव एक गुटिका है। तैसैं गुण जुदे जुदे अपने अपने स्वभावकौं लिए हैं, किसही गुणका भाव किसही गुणसौं न मिलै, ज्ञानका भाव दर्शनसौं न मिले, दर्शनका भाव ज्ञानसौं न मिलै, ऐसैं अनंत गुण हैं कोई गुण काहूसौं न मिलैं। सब गुणका एकांतभाव चेतनाका पुंज द्रव्य है। जो गुणहीकौं मानिए तौ आकाश के फूल होय, गुणी बिना गुण कैसैं होय? न होय।

गुण तौ एक ज्ञान मान्या, द्रव्य विना ज्ञानही वस्तु, नाम पाया, तब ज्ञान वस्तु हुआ। ऐसैं अनंतगुण अनंत वस्तु यों होतैं विपरीत होय, यों तौ नाहीं। एक वस्तु आधार सब गुणका है सो द्रव्य कहिये।

कोई प्रश्न करै है—यह द्रव्य वस्तु है कि अवस्था है वस्तु की। ताका समाधान—सामान्य विशेषका एकांतरूप वस्तुका स्वरूप है। द्रवीभूत गुणतैं द्रव्यनाम पाया है, सो वस्तुकी अवस्था द्रवत्व करि द्रव्यरूप भई, सो वस्तुही है, विशेषणतैं विशेष संज्ञा होय, स्याद्वादमें विरोध नाहीं, नय सापेक्ष वस्तुकी सिद्धि है। उक्तं च

मिथ्या[1] समूहो मिथ्यास्ति न मिथ्यैकांततास्तिनः।
निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तुतेऽर्थकृत् ॥

देवागमस्तोत्र का० १०८

१ परवादीके आशयका विचार करते हुए आचार्य समन्तभद्रने उक्त पद्य में बतलाया है कि—"मिथ्यारूप एकान्तोंका समूह यदि मिथ्या है तो वह मिथ्याएकांतता—परस्पर निरपेक्षता—हमारे (स्याद्वादियोंके) यहां नहीं है; क्योंकि निरपेक्षनय मिथ्या हैं, वे सम्यक् नहीं हैं, किन्तु जो सापेक्ष हैं वे वस्तु स्वरूप हैं—सम्यक् हैं—और अर्थ क्रियाकारी हैं। अर्थात् निरपेक्षनय को मिथ्या मानना तो इष्ट है—हम वैसा मानते ही हैं; क्योंकि वे निरपेक्ष होनेके कारण एकान्तरूप हैं—अनेकांत नहीं हो सकते, अतएव वे मिथ्या हैं किन्तु सापेक्षनय समूह अनेकांत रूप है अतः यथार्थ है, वास्तविक है और अर्थ क्रिया करनेमें समर्थ है।

तातैं यह द्रव्यका कथन सिद्ध भया । आगैं गुणाधिकार में गुणका कथन कीजिये है:—

गुणाधिकार

"द्रव्यं द्रव्यात् गुण्यंते ते गुणाः उच्यंते" गुणनिकर द्रव्य जुदे जानिए हैं चेतनगुणकरि जीव जानिए है। एक अस्तित्व गुण है, साधारण है, सबमैं पाइए है। महासत्ता की विवक्षाकरि अवांतरसत्ता, अपना अपना अस्तित्व सब लिए [हैं] तहां सरूप सत्ता तीन प्रकार है द्रव्यसत्ता, गुणसत्ता, पर्यायसत्ता। तहां द्रव्य है यह द्रव्यसत्ता कहिये। द्रव्य तौ कह्या । अब गुण है सो गुणसत्ता कहिये । गुण अनंत हैं, सामान्य विवक्षामैं अनंत ही प्रधान है। विशेष विवक्षामैं जो गुण प्रधान कीजिये सो मुख्य है और गौण है यातैं मुख्यता गौणता भेद, विधि-निषेध भेद जानिये । सामान्य-विशेषमैं सब सधै है। नय विवक्षा प्रमाण, विवक्षा युक्ति है। युक्ति प्रधान है, युक्तितैं वस्तु साधिये। 'उक्तं च नयचक्र मध्ये'

"तच्चाणे (एणे) सणकाले समयं बुज्झेहि जुत्ति मग्गेण ।
णो आराहणसमये पच्चक्खो अणुहवो जम्हा ॥"[1]

यातैं युक्ति नय प्रमाण है सो जाणिये । गुण-सत्तामें अनंत भेद हैं सो गुणके अनंत भेद हैं । एक सूक्ष्मगुणके अनंत पर्याय हैं । ज्ञान सूक्ष्म, दर्शन सूक्ष्म, सब गुण ऐसैं ही सूक्ष्म जाणनें । सूक्ष्मके पर्याय हैं । सूक्ष्म गुण का ज्ञान सूक्ष्म पर्याय, ज्ञायकतारूप अनंत शक्तिमय नृत्य करै है । एक ज्ञान नृत्य में अनंत गुण का घाट (तमाशा) जानिवेमैं आया है, तातैं ज्ञानमैं है । अनंत गुण के घाट मैं गुण एक एक अनंतरूप ज्ञेय अपने ही लक्षणकौं लिए हैं, यह कला है, एक एक कला गुणरूप होवेतैं अनंतरूप धरैं हैं । एक एक रूप जिहि रूप भया तिनकी अनंत सत्ता है, एक एक सत्ता अनंत भावकौ धरैं है । एक एक भावमैं अनंतरस हैं, एक एक रसमैं अनंत प्रभाव है । या प्रकार अनंत लगि ऐसे भेद जाननें ।

१, अर्थ—तत्त्व के अन्वेषण काल में समय को-सिद्धान्त को-युक्ति मार्ग से जानना चाहिये, किन्तु आराधन के समय में युक्ति की आवश्यकता नहीं होती; क्योंकि वहां तत्त्व का प्रत्यक्ष अनुभव होता है ।

गुण एक एक सौं लगाय दूजै गुण सौं अनंत सप्तभंग सधै है, ताकौ कथन; सत्ता ज्ञानरूप है कि नाहीं है। जो सत्ता ज्ञानरूप कहिये तौ "द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणा"[1] या फाकी मैं गुण में गुण मैंने किया है सो झूंठी फाकी होय है। जो ज्ञान रूप न मानिएं तौ जड़ होय है, तातैं सप्तभंग साधिए है।

केवल चैतन्यकौ अस्तित्व है ऐसौ जब कहिये तब ज्ञानरूप है १ केवल सत्ता लक्षण सापेक्ष अन्य गुण निरपेक्ष लीजिये तब ज्ञानरूप नाहीं है २। दोऊ विवक्षा मैं ज्ञानरूप, है, नाहीं ३। अनंत महिमा वचन गोचर नाहीं तातैं अवक्तव्य है ४। ज्ञानरूप कहें, नाहीं को अभाव होय तातैं ज्ञानरूप है परि अवक्तव्य है ५। ज्ञानरूप नांहीं कहें, ज्ञानरूप है को अभाव होय तातैं अवक्तव्य है ६। दोन्यों एकवार युगपत कहे न जांय तातैं अवक्तव्य है ७। या प्रकार चैतन्य करि सत्ता ज्ञानसौं सात भंग सधै हैं। याही प्रकार चैतन्य करि सत्ता दर्शनसौं साधिये। याही प्रकार वीरजसौं प्रमेयत्व सौं यों ही अनंत गुणसौं सत्तासौं चेतनाकी

१, तत्वार्थ सूत्र ५-४०

जुदे जुदे देखे है। परज्ञेय भेद जुदे देखे है। ज्ञान जानने मात्र परिणमा सो निर्विकल्प सम्यक्ज्ञान है। स्व ज्ञेय भेद जुदे जानै है, परज्ञेय भेद जुदे जानै है सो सविकल्प सम्यक्ज्ञान कहिये। आचरणरूप परिणमा सो निर्विकल्प सम्यक्चारित्र कहिये, स्वज्ञेयकौं आचरै है पर ज्ञेयके त्यागकौं आचरै है सो सविकल्प सम्यक्चारित्र कहिये, इत्यादि बहुत भेद हैं। इ [य] हाँ कोई प्रश्न करै कि सम्यक्त्व उपयोग है "कि नाहीं ? जो उपयोग है"[1] तौ उपयोग के बारा (१२) भेद क्यों किये, आठ ज्ञानके चार दर्शनके, सम्यक्त्व तौ न ल्याया ? (न लिया) जो उपयोग नाहीं तौ प्रधान [प्रधानत्व] क्यों संभवै है ? ताको समाधान— यह सम्यक्त्व गुण है सो प्रधान गुण है काहेतैं सब गुण सम्यक् या करि हैं, सब गुणकौ अस्तित्व पणौं या करि है. सब गुणकौ निश्चय जथा-अवस्थितभाव करि है। निश्चय कौ नाम सम्यक्त्व है, जहाँ व्यवहार भेद विकल्प नहीं, अशुद्धता नहीं, निज अनुभव स (स्व) रूप सम्यक् है। ज्ञान जाननमात्र परिणम्या, सम्यक्त्व

1, पाटनीजी वाली ख प्रति में इनवर्टेट कौमाज् वाली पंक्ति नहीं है।

सम्यक (सम्यक्त्व) की शुद्धतातैं भए। तातैं प्रथम सम्यक्त गुण भया, पीछैं और गुण भए। सिद्ध भगवान हू कैं प्रथम सम्यक्त ही कह्या, तातैं सम्यक् (सम्यक्त्व) प्रधान है। उपयोग तौ दरसन ज्ञान है जहाँ सम्यक् दर्शन आवै, तहाँ सम्यक्त लेना। अर दर्शन आवै [तब] देखिवे रूप दर्शन लेना, वस्तुका निश्चय रूप अनुभव रूप सम्यक्त है सो प्रधान है।

अब ज्ञान गुणका स (स्व) रूप कहिये है:—

ज्ञान जानपणा ऐसा निर्विकल्प है सो स्व ज्ञेयकौं जानै है; सो पर ज्ञेयके जाननेमें ज्ञान

कहे तिनविषै काललब्धि वा होनहार तो किछू वस्तु नाहीं, जिस कालविषै कार्य बनैं सोई काललब्धि और जो कार्य भया सोई होनहार। बहुरि कर्म का उपशमादि है सो पुद्गलकी शक्ति है तथा आत्मा कर्ता हर्ता नाहीं। बहुरि पुरुषार्थतैं उद्यम करिए हैं, सो यह आत्माका कार्य है, तातैं आत्माकौं पुरुषार्थ करि उद्यम करने का उपदेश दीजिये है,⋯ ⋯सो जिनमतविषै जो मोक्ष का उपाय कहा है, सो इसतैं मोक्ष होय ही होय, तातैं जो जीव पुरुषार्थकरि जिनेश्वरका उपदेश अनुसार मोक्षका उपाय करै है, ताकै काललब्धि वा होनहार भी भया अर कर्म का उपशमादि भया है, तो यह ऐसा उपाय करै है। तातैं जो पुरुषार्थकरि मोक्षका उपाय करैं है, ताके सर्व कारण मिलैं हैं, ऐसा निश्चय करना। अर वाकै अवश्य मोक्षकी प्राप्ति हो है।

नीरूपात्मप्रदेशप्रकाशमानलोकालोकाकार मेचकउपयोगलक्षणा स्वच्छत्वशक्तिः।"[1]

सो ही स्वच्छ शक्ति है, जैसैं आरसीमें घट पट दीसैं तौ निर्मल, न दीसैं तौ मलीन, त्यौंही ज्ञान में सकल ज्ञेय भासैं तो निर्मल, न भासैं तौ निर्मल नहीं। ज्ञान अपने द्रव्य प्रदेश करि तौ ज्ञेयमें न आवै, तन्मय न होय, जो यों तन्मय होय तौ ज्ञेयाकारके विनसैं ज्ञान विनाश होय। सो द्रव्य-करि ज्ञेय व्यापकता नहीं। ज्ञानकी कोई स्व-पर प्रकाशक शक्ति है तिस शक्तिकी पर्याय करि ज्ञेयकौं जानै है।

ज्ञानमात्र वस्तुकौ स्वरूप, तिहि विषैं प्रश्न च्यारि उपजैं छै। एक तौ प्रश्न यह, जो ज्ञान ज्ञेयका सारा कौ छै कै आपणा सारा कौ छै। दूजौ प्रश्न यों, जो ज्ञान एक छै कि अनेक छै। तीजो प्रश्न इसौ जु. ज्ञान अस्ति छै कि नास्ति, चौथौ प्रश्न इसौ, जो ज्ञान नित्य छै कि अनित्य छै, तिहिको समाधान—

---

१ समयसार आत्मख्याति पृ० ५५७।

"जो अमूर्तिक आत्माका प्रदेशोंमें प्रकाशमान लोक अलोकके आकार रूप दीखनेवाला उपयोग जिसका लक्षण है वह स्वच्छत्व शक्ति नामकी शक्ति है।

संज्ञा. संख्या, लक्षण प्रयोजनता और गुणमें छै।

तिहमें क्यों एक विशेष भेद लिखजे छै, सो विशेष ज्ञानसौं विशेष सुख छै, ज्ञान आनन्दकौ सामीप्यपनौ छै। ई [इस] वास्तैं ज्ञानविषैं सात भेद हैं- सो प्रथम १ नाम, २ लक्षण, ३ क्षेत्र, ४ काल, ५ संख्या, ६ स्थान-सरूप, ७ फल ये सप्त-भेद कहिये हैं। नामज्ञान काहेतैं कहिये। ज्ञातीति ज्ञानं, ज्ञायते याकरि तातैं ज्ञान कहिये। यो जानै हैं, (अथवा) याकरि (इसके द्वारा) जीव जानै है तातैं ज्ञान नाम है। ज्ञानका लक्षण सामान्यपना करि निर्विकल्प है, सो ही स्व-पर-प्रकाशक है। विशेष ऐसा कहिये—जो केवल स्व-संवेद ही हैं, सो स्व-पर-प्रकाशक नाहीं, तौ महादूषणहोय। स्वपदकी थापना परके थापनतैं (स्थापनतें) है, परका थापनाकी अपेक्षा दूरि कीजे, तब स्वका थापना भी न सधै है। तातैं स्व-पर-प्रकाशक शक्ति मानैतैं सब सिद्धि है। यामें (इसमें) धोखा नाहीं।

ज्ञान अनंतगुणकौं जानै है, सो एक दर्शनको भी जानै है, सो दर्शनमात्रके जाननेतैं एकदेश ज्ञान है, अथवा सर्वदेश ज्ञान है ? जो सर्वदेश

जानवेमें दर्शन भी आया, (तहां) बहुत गुणका जानपना मुख्य भया तामैं दर्शन भी आया, परि या रूप ज्ञान न कहिये। जुगपत (जाननेकी) शक्ति ज्ञानकी है, तातैं जुदा विशेषण लेना। जैसैं पांच रस जा रसके वीच गर्भित हैं ऐसा रस काहूनै चाख्या, तहां ऐसा कहना न आवै जो या पुरुषनै मधुररस चाख्या, तैसैं दर्शन अनंत गुणमें आया, एक (की) कल्पना करी न जाय यह जानना। ज्ञान अपने सत्तकरि सत्तारूप है, ज्ञान अपने सूक्ष्मत्व करि सूक्ष्मरूप है। ज्ञान अपने वीर्यकरि अनंत बलरूप है, ज्ञान अपने अगुरुलघुत्वकरि अगुरु-लघुरूप है, यों अनंतगुणके लक्षण ज्ञानमें आए। ज्ञान त्रिकालवर्ती सबकौं एक समयमें जुगपत जानै है। तहाँ यह प्रश्न आवै है—आत्माके अनागत कालके समय-समयमें जो परिणामद्वार-करि जो सुख होयगा सो तो ज्ञानमें आय प्रति-भास्या। नवा नवा (नवीन नवीन) समय समय का स्वसंवेदनपरणतिका सुख कहना किसा (कैसा) रह्या ? ताका समाधान—

ज्ञान भावमें भाविकाल भये जो परिणाम व्यक्त होहिंगे, तब वे सुख व्यक्त हौंहिंगे। यहां

व्यक्त परिणाम भए सो सुख है। तिसतैं परिणाम एक समय ही रहैं हैं, तिसतैं समयमात्र परिणाम का सुख है, ज्ञानका जुगपत सुख है। परिणामका समयमात्र है, समय समयके परिणाम जब आवैं तब व्यक्त सुख होय। परिणामभावित्रिकालके ज्ञानमें आए, परि भए नांहीं, तातैं परिणामका क्रमवर्ती सुख है सो तौ समय समयमैं नवा नवा होय है, ज्ञान उपयोग जुगपत है अपना अपना लक्षण उपयोग लिए हैं, तातैं परिणामका सुख नवा कहिये, ज्ञानका सुख जुगपत है। ज्ञानकी अन्वय अर जुगपत शक्ति है। तिसकौं परजायकी व्यतिरेक शक्ति व्यापकरूप होय अन्वयरूप हो है, अन्वय जुगपत है सो समय परिणामद्वारमें आवै है तिसे परिणया ज्ञान कहिये। अथवा ज्ञान रूप ज्ञान परिणवै है तव व्यतिरेक शक्तिरूप ज्ञान होय है। अन्वय-व्यतिरेक परस्पर अन्योन्य-रूप होय हैं तातैं परमलक्षण वेदकतामें (तें) है, वेदकता परिणामतैं द्रव्यत्व गुणके प्रभावतैं परिणाम द्रव्य गुणाकार होय है, द्रव्य-गुण-पर्यायाकार होय है। या प्रकार ज्ञानके बहुत भेद सधैं हैं। जानपणा लक्षण ज्ञानका है यह ठीक भया ताका

विस्तार और है।

अब ज्ञानका क्षेत्र कहियें है—असंख्यात प्रदेश भेदविवक्षामें कहिये, अभेदमें ज्ञानमात्र वस्तुका सत्वक्षेत्र है। काल-ज्ञान-मर्याद जेती (जितनी) है तेता ज्ञानकाल है। संख्या ज्ञानमात्र वस्तु सामान्य तातैं एक है। पर्यायनैं अनंत है, शक्ति अनंत है। भेदकल्पनामें दर्शनको जानै सो दर्शनका ज्ञान नाम पावै। सत्ताको जानै सो सत्ताका ज्ञान नाम पावै। यातैं कल्पना किये भेद संख्या है। निर्विकल्प अवस्थामें एक है। यह संख्या प्रदेशमें गिणिये तौ असंख्यात प्रदेश ज्ञानके हैं। ज्ञानमात्र वस्तुका स्थानक ज्ञानमात्र वस्तुमें है, तिसतैं ज्ञानस्वरूप अपने स्थानकमें है। सो ही स्थानस्वरूप कहिये। दर्शनकौं जानै सो दर्शनका जाननेका स्थान स्वरूप दर्शनका ज्ञान है। यह भेद कल्पना उठे है, ज्ञाता जानै है। ज्ञानका फल है सो ज्ञान है, एकनौ यौं है, काहेतैं? "औरका फल और न होय, निजलक्षणकौं न तजै गुणमें गुण न पाइये[1]। यातैं" निर्विकल्प

1. यह पंक्ति पाटनीजीकी प्रतिमें नहीं है। दिल्ली प्रतिके अनुसार दी गई है।

है। केईएक वक्ता सिद्धस्तोत्रकी टीका करी तिन, तथा और भी है, तिनहूनै ऐसा कह्या, सामान्य शब्दका अर्थ आत्मा कह्या है। आत्माका अवलोकन सो दर्शन, स्व-पर अवलोकन करै सो ज्ञान, ऐसैं कहै एक गुणही थपै, जो दर्शन आत्मा अवलोकनमें था. सो ही परलोकनमें आया। तो गुण एक ही होय तौ आवरण दोय न होंय। ज्ञानावरण, दर्शनावरण इनके गएतैं दोय गुण सिद्ध भगवानकै प्रगटे हैं, निःसन्देह यह कथन है। आत्माका अवलोकनही दर्शन होय तौ सर्वदर्शित्व शक्तिका अभाव होय, सो सर्वदर्शि शक्ति कही है। 'विश्वविश्वसामान्य-भावपरिणामात्मदर्शनमयी सर्वदर्शित्वशक्तिः'[1] [समयसार आत्मख्याति टीका पृष्ठ ५५७] ऐसा सिद्धान्त का वचन है। उपन्यास (?) समयसार में कह्या है। यहां कोई प्रश्न करै है—निराकार दर्शन कह्या [सो] सर्वदर्शि शक्तिमें सर्वज्ञेयके देखनेसे निराकार न रह्या, ताका समाधान-गोम्मटसारजीमें कह्या है:—

१ समस्त पदार्थोंका समूहरूप जो लोक-अलोक, उसका सामान्यभाव सत्ता मात्र, उसके अवलोकनरूप जिसका स्वरूप परिणमा है ऐसी देखनेरूप सर्वदर्शित्व शक्ति है।

मात्र अवभासन दर्शन कहिए । दर्शनके विषैं भी सात भेद हैं सो कहिये हैं। दर्शन देखवेतैं नाम पाया तातैं यह नाम है। देखवेमात्र लक्षण है, असंख्यात प्रदेशमें क्षेत्र है। स्थिति दर्शनके काल की मर्यादा कहिये। संख्या वस्तुरूप एक शक्ति पर्याय अनेक है सो संख्या है। वस्तु अपने स्थानमें अपना स्वरूप लिये सो स्थान स्वरूप है, आनन्द फल है वस्तु भावकरि इस दर्शनका शुद्ध प्रकाश सो ही फल है। विवक्षा अनेक है सो प्रमाण है। ऐसा दर्शनका संक्षेपमात्र कथन कह्या है।

आगे चारित्र का कथन कहि (रि) ये है—

चारित्र आचरणका नाम है, आचैर अथवा याकरि आचरण कीजे सो चारित्र कहिये। चारित्र परिणामकरि वस्तुकौं आचरिए सो चारित्र, चरण-मात्र चारित्र, यह निर्विकल्प है। निजाचरण ही है, परका त्याग है, यह भी चारित्रका भेद है। द्रव्यविषैं थिरता, विश्राम, आचरण द्रव्याचरण कहिये। गुणविषैं थिरता, विश्राम, आचरण, गुणा-चरण कहिए। ताकौं विशेष कहिये है—सत्ता

गुणविषैं परिणामकी थिरता सत्ताका चारित्र है।

कोई प्रश्न करै [कि] थिरअविनाशीका नाम है, चारित्र, परिणामकी प्रवृत्ति स्वरूपमें आवै सो है, परिणाम समय स्थायी है, तातैं क्योंकरि बनैं. ताको समाधान—ज्ञान दर्शन स्वरूपमें थिरता रूपकरि स्थिति, ऐसी थिरताका नाम भी चारित्र है, जो चारित्र परिणामकी प्रवृत्ति स्वरूपमें भए, ज्ञान दर्शनकी स्थिति स्वरूपमें है है। परिणाम वस्तुकौं वेदिकरि स्वरूपमें उठै है, तहां स्वरूपका लाभ होय है। फिर वहै वस्तुमें लीन होय है। उत्तर परिणामकौ कारण है। वस्तुका, द्रव्य गुण का आस्वाद लेकरि वस्तुमें लीन भया, तब वस्तु सर्वस्व इसतैं प्रगट भया, व्यापकपनातैं वस्तु सर्वस्वकी मूलस्थितिका निवास वस्तु भया, सो भी परिणामकी लीनतामें जाना गया।

तातैं ज्ञान दर्शन शुद्धता परिणाम शुद्धतातैं है। जैसैं अभव्यके दर्शन ज्ञान सिद्धसमान निश्चैकरि हैं [परन्तु] परिणाम कबहू न सुलटैं, तौ अशुद्ध दर्शन ज्ञान सदा रहे। भव्यके परिणाम शुद्ध होंय तातैं शुद्ध ज्ञान दर्शन भी होय। ई [इस] न्याय-करि परिणामकी निजवृत्ति भयें, स्वभाव गुण-

रूप वस्तुमें उपयोगकी थिरता चारित्र है। द्रव्यकौं द्रवै है, परिणाममें द्रवत्व शक्ति है सो द्रवै है। द्रव्यमें द्रव्यत्व शक्तिकरि द्रव्य-गुण-पर्यायकौं द्रवै है। गुणमें द्रवत्व शक्ति है, [तातैं] द्रव्य पर्यायकौं द्रवै है या द्रवत्व-शक्ति द्रव्य-गुण-पर्यायनमें है। परिणाम गुणमें द्रवै करि व्यापै, तब गुण द्वार परिणति भई; तब गुण अपने लक्षण प्रकाशरूप भये। द्रव्यरूप परिणति भई, तब द्रव्य लक्षण प्रगट भया। तातैं परिणामविना द्रवता नाहीं, द्रवैं विना व्यापकता नाहीं, तातैं व्यापकता विना द्रव्यका प्रवेश गुण-पर्यायमें न होय, तातैं अन्योन्य सिद्धि न होय। तातैं अन्योन्य सिद्धिके निमित्त परिणाम सर्वस्व है, आत्मामें ज्ञान-दर्शन की स्थिति परिणामकरि भई सो चारित्र है। वेदकता विश्राम स्वरूपमें भया सो विश्रामरूप चारित्र है, वस्तुकौं गुणको स्वरूप—आचरि (आचरणकरि) प्रगट करै है, तातैं आचरणरूप चारित्र है, चारित्र सर्वस्वगुण द्रव्यका है। सत्ताके अनंत भेद हैं, अनंतगुणके अनंत सत्त (त्व) भए। ज्ञान सत्त, दर्शन सत्त या प्रकार जानौ। तिन अनंतसत्तका आचरण,

भावी हैं) सो क्रमवर्तीतैं जुगपत गुणकी सिद्धि कैसैं होय है? ताका समाधान—गुणकी सिद्धि पर्यायहीतैं है, सोई कहिये है। अगुरुलघुगुणकी पर्याय विना सिद्धि नहीं, त्यौंही सब जानौ। अगुरु लघुका विकार षट्गुणी वृद्धि-हानि है, षट्गुणी वृद्धि-हानि न होय तौ अगुरु-लघु न होय। सूक्ष्मगुणकी पर्याय न होय तौ सूक्ष्म न होय। ज्ञानसूक्ष्म, दर्शनसूक्ष्म, सूक्ष्म का पर्याय है तातैं पर्यायका साधक है, गुण सिद्धि है।

षट्गुणी वृद्धि-हानिका स्वरूप कहा? यह प्रश्न भया—ताका समाधान—सिद्ध भगवान हैं तिनविषैं षट्गुणी वृद्धि-हानिका स्वरूप कहिये है—सिद्ध परमेश्वर अपने शुद्ध सत्तास्वरूप परिणवैं यों कहिये। तहाँ अनंत गुणमें सत्ता गुण एक आया, अनंतगुणका अनंतवां भाग हुआ, तिस परिणमनकी जो वृद्धि सो अनंतभागवृद्धि कहिये। भगवानमें असंख्य गुणकी विवक्षा लीजै तामैं कहिए भगवान द्रव्यत्व गुणरूप परिणवैं हैं, असंख्यमें एक आया तहां असंख्यातवां भाग हुआ, तिस परिणमनकी वृद्धि सो असंख्यातभागवृद्धि

कहिये। सिद्धकैं आठ गुण हैं, तिनमें कहिये सिद्ध समकितरूप परिणवैं हैं तहाँ संख्यातभाग-वृद्धि कहिये। ये सिद्ध आठों गुणरूप परिणवैं हैं तहाँ आठगुण परिणमनकी वृद्धि भई सो संख्यात गुणवृद्धि कहिये। सिद्ध असंख्यातगुणरूप परि-णमैं हैं, तहां असंख्यगुण परिणमनकी वृद्धि भई सो असंख्य गुणवृद्धि कहिये। सिद्ध अनंतगुण रूप परिणमैं हैं, तहां अनंतगुण परिणमनकी वृद्धि भई सो अनंतगुणवृद्धि कहिये। ये षट्-प्रकार वृद्धिकरि परिणाम वस्तुमें लीन होय गयो, तब षट् प्रकार हानि कहिये, ये वृद्धि-हानि होय हैं, तब अगुरु लघुगुण रहे है। अगुरु लघुगुणतैं वस्तुकी सिद्धि है। तातैं गुणकी सिद्धि गुणपर्या-यतैं है, द्रव्य की सिद्धि द्रव्यपर्यायतैं है पर्यायकी सिद्धि द्रव्य गुणकरि है। द्रव्य-पर्यायकी सिद्धि द्रव्यकरि है, गुणपर्यायकी सिद्धि गुणकरि है। द्रव्यहीतैं पर्याय उठै है, द्रव्य न होय तौ परिणाम न उठैं। द्रव्य, विना परिणवैं द्रव्यरूप कैसें ? यातैं द्रव्यतैं पर्यायकी सिद्धि है। ज्ञान गुण न होय तौ जानपनारूप कैसैं परिणमैं? गुण द्वार परिणति है। जैसैं द्वार न होय, द्वारका

प्रवेश कहांतैं होय। गुण न होय तौ गुणपरि-णाम भी न होय। सूक्ष्मगुण न होय तौ सूक्ष्म-गुणकी पर्याय कहाँतैं होय ? याही प्रकार सब गुणविषैं जानौ। गुणमय होय गुणपरिणति है।

परिणमनशक्ति द्रव्यमें है

कोई प्रश्न करै है—यह परिणति गुणद्वारतैं उपजी सो गुणकी है, अथवा द्रव्यकी है ? जो गुणकी होय तौ गुण अनंत हैं। [तब] परिणति भी अनंत होंय। अर द्रव्यकी होय तौ गुणपरिण-ति काहेको कहो हौ ? ताका समाधान—यह परिणमनशक्ति द्रव्यमें है, द्रव्य गुणका पुंज (समूह) है, सो अपने गुणरूप आपही परिणमैं, तातैं गुणमय परिणमता गुणपर्याय कहिये। तातैं द्रव्यकी परिणति, गुणकी परिणति यौं तौ कहिये है, पर यह परिणमनशक्ति द्रव्यतैं उठै है, गुणमैं नाहीं। याकी साखि सूत्रजी (तत्त्वार्थ सूत्र) में दी है:—'द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः' [त० सू० ५-४०] द्रव्यके आश्रय गुण है गुणके आश्रय गुण नाहीं। 'गुणपर्ययवद्द्रव्यं' [त० सू० ५-३८] यह भी कह्या है, पर्यायवंत द्रव्य ही कह्या गुण न कह्या।

यहां कोई प्रश्न करै है---सूक्ष्मगुणकी पर्याय, ज्ञानसूक्ष्म सब गुण सूक्ष्म हैं, यह सूक्ष्मपणा गुणनमैं सूक्ष्मगुणका है अथवा द्रव्यका है, द्रव्यका है तौ गुणसूक्ष्मके अनंतपर्याय क्यों कहे ? सूक्ष्म गुणका है तौ द्रव्यकी परिणति काहेकों कही ? ताका समाधान— द्रव्य सूक्ष्म है सो सूक्ष्मगुणकरि है द्रव्यके सूक्ष्म होतैं गुण अनंतका पुंज द्रव्य हैं, तातैं सब गुण सूक्ष्म भए. पर यह परिणमनशक्ति द्रव्यतैं है। द्रव्य गुण लक्षणरूप परिणमैं हैं। तातैं क्रमाक्रम स्वभाव द्रव्यका कह्या, ताका समाधान फेरि कीजिये है। क्रमके दोय भेद किये–एक प्रवाहक्रम, एक विष्कंभक्रम। प्रवाहक्रम यह कहिए–जो अनादितैं कालका समयप्रवाह चल्या आवै है, त्यों द्रव्यमें समय-समय परिणाम उपजैं हैं सो प्रवाह चल्या आवै है, सो प्रवाहक्रम कहिये। सो द्रव्यका परिणामविषैं है सिद्धांत प्रवचनसारजीमें जानना। विष्कंभक्रम गुणका है, सो गुण चौड़ाईरूप है प्रदेश चौड़ाईरूप हैं। तिनकौ क्रमसौं गिणैं असंख्य भये। क्रम यह प्रदेशका गुणमें है, तातैं विष्कंभक्रम कहिये। अथवा गुणक्रमसौं कहिये, दर्शन-ज्ञान

इत्यादि सब विस्तारकौं धरै हैं तातैं विष्कंभक्रम कहिये। यहां प्रवाहक्रम द्रव्यका परिणामकरि है, तातैं गुणमें नाहीं, तातैं गुण परिणतिका प्रवाह नाहीं। गुणतैं विस्तारक्रम ही कह्या है। द्रव्यकी परिणति है सो सब गुणमें है ज्ञानमय आत्मा परिणमै है, ज्ञान जानपनारूप परिणमै है ऐसैं तो लक्ष-लक्षण भेदकरि एक परिणाम भेद है, पर यौं तौ नाहीं ज्ञानकी परिणति जुदी है, आत्माकी जुदी है, ऐसैं मानें सत्व जुदा आवै है। सत्व जुदा भएतैं वस्तु अनेक जुदी-जुदी अवस्थाधरि वरतैं, तब विपर्यय होय है. वस्तुका अभाव होय है। तहाँ प्रश्न उपजै है—जुदी परिणति मानैं दोष कहा? अभेदपरिणति गुण आत्माकी मानेतैं, ज्ञान जानपनेरूप परिणमे, दर्शन देखवेरूप परिणमै. ऐसा कहना वृथा भया। अभेदमें भेद न उपजै यानैं समाधान कीजिये— द्रव्यकै परिणामकी वृत्ति उठेतैं अनंतगुणका पुंज द्रव्य है, तातैं गुणतैं भी उठी कहिये, सत्व द्रव्य-गुणका दोय नाहीं, एक है। द्रव्यमय परिणवैं गुण आएं तातैं गुणमय परिणाम है। या प्रकार एक वस्तुका परिणाम निर्विकल्प है। ज्ञानरूप आत्मा परिणमा, तो परिणाम जानपनेमें आया, तातै

ज्ञान जानपनेरूप परिणमै है, ऐसी विवक्षा है सो जाननी। वस्तुका परिणाम सर्वस्व कह्या है सो काहेतैं? परिणामतैं अन्वय स्वभाव पाइये है। जो परिणाम न होय तौ अन्वयी द्रव्य न होय। अनन्तगुण विना परिणामैं द्रव्य न होय। यातैं वस्तु वेदकमैं सर्वस्व परिणाम सो वेदकता है गुण परिणामसौं गुण आस्वादका लाभ होय। द्रव्य परिणाम सौं द्रव्य आस्वादका लाभ होय। कहनेमैं लक्ष-लक्षन भेद ऐसा बताया है, काहेतैं ? लक्षण विना लक्ष्य ऐसा नाम न पावै है। यौं तौ है परि परमार्थताकरि अभेदनिश्चयमैं निर्विकल्पवस्तुमैं द्वैत कल्पनाका विकल्प कहाँ संभवै है? एक अभेद-वस्तुमैं सब सिद्धि है। जैसैं चंद्र-चंद्रिका प्रकाश एक ही है। सामान्यताकरि निर्विकल्प है। विशेषता शिष्यकौं प्रतिबोध कीजे, तब ज्यों-ज्यों शिष्य गुरुके प्रतिबोधैं तो गुणका स्वरूप जानि जानि विशेष भेदी होता जाय, तब वस शिष्यकै आनन्दकी तरंग उठै, तौही समैं (उसी समय) वस्तुका निर्विकल्प आस्वाद करै, या कारणतैं गुण-गुणी विचार जो (वो) रच है। विशेष गुणका कह्या है, इस परिणामहीतैं उत्पाद-व्ययकरि

वस्तुकी सिद्धि सो कहिये है। प्रथमही सब सिद्धांतका मूल यो है, जो वस्तुका कारण कार्य जानिये, जेते संसारसौं पार भए ते सब परमात्मा के कारण कार्य जानि-जानि भये। तीनोंकाल जिस परमात्माके ध्यायेतैं मुक्त भये, जिसका कारण-कार्य न जान्या तौ तिसनैं कहा जान्या? यातैं कार्य-कारण जानिये।

सो कारण-कार्य काहेतैं उपजै है? सो कहिये हैं:—

पुव्व परिणामजुदं कारणभावेहि परिणदं दव्वं।
उत्तरपरिणामजुदं कज्जं दव्वं हवे णियमा ॥ १ ॥

यह सिद्धांतमें बताया है [कि] पूर्व परिणाम युक्त जो द्रव्य है सो कारणभाव परिणया है [और] उत्तर परिणामयुक्त जो द्रव्य है सो कार्यभाव परिणया है, काहेतैं? पूर्वपरिणाम उत्तर-परिणामकौं कारण हैं, पूर्व परिणामका व्यय उत्तर [परिणाम]के उत्पादकौ कारण है। जैसैं—माटी पिंडका व्यय घट कार्यकौ कारण है। कोई प्रश्न करै है [कि] उत्तर परिणाम उत्पादमें कहा कार्य होय है? ताका समाधान—स्वरूपलाभ लक्षणकौं लिये उत्पाद है, स्वभाव प्रच्यवन लक्षणकौं लियें

व्यय है, तातैं स्वरूप आपमें आपै है, यह निःसंदेह जानौ। समय-समय परमात्मामें होय है, यातैं संत ऐसे कारण-कार्यकौं परिणामद्वारकरि जानौ, कारण [और] कार्य परिणामहीतैं होय है। वस्तुके उपादानके दोय भेद कहे, सो कहिये है। उक्तं च अष्टसहस्रीमध्ये—

त्यक्तात्यक्तात्मरूपं यत् पौर्वापर्येण वर्तते।
कालत्रयेऽपि तद्द्रव्यमुपादानमिति स्मृतं ॥ १ ॥

यत्स्वरूपं त्यजत्येव यन्न त्यजति सर्वथा।
तन्नोपादान द्रव्यस्य क्षणिकं शाश्वतं यथा ॥ २ ॥

अर्थः—द्रव्यके व्यक्तस्वभाव तौ, परिणाम व्यतिरेक स्वभाव है; अव्यक्तस्वभाव गुणरूप है, अन्वय स्वभाव है; सो गुण तौ पूर्वै है सो ही रहै है; परिणाम अपूर्व-अपूर्व होय है, यह द्रव्यका उपादान है सो परिणामकौं तौ तजै गुणकौं सर्वथा न तजै। तातैं परिणाम क्षणिक उपादान है, गुण शास्वतौ उपादान है; वस्तु उपादानतैं सिद्ध है। कोई प्रश्न करै है [कि] उत्पादादि जीवादिकतैं भेदस्वरूप सधै है वा अभेद सधै है? जो अभेद सधै है तौ त्रिलक्षणपणौं न होय। जो भेद

मधै हैं तौ सत्ता-भेद भए सत्ता बहोत (बहुत) भयें तहां विपरीत होय। ताकौ समाधान— लक्षण भेद है, सत्ताभेद नाहीं तातैं सत्तातैं अभेद-संज्ञादि भेद जानना। वस्तुकी सिद्धि उत्पाद, व्यय, ध्रुव तीनौंकरि है। अष्टसहस्रीमध्ये उक्तं च—

पयोव्रतो न दध्यत्ति न पयोऽत्ति दधिव्रतः।
अगोरसव्रतो नोभे तस्मात्तत्वं त्रयात्मकम् ॥ ६० ॥
घट-मौलि-सुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितिष्वयम्।
शोक-प्रमोद-माध्यस्थं जनो याति सहेतुकम् ॥५९॥
[देवागम आप्तमीमांसा]

जैसैं काहू पुरुषनै पय (दूध)का व्रत किया है— मैं पयही पीवौं, सो दहीको भोजन न करै। दही का जिसके व्रत है सो पयका भोजन न करै, अर गोरसका [जिसके] नियम है—मैं गोरस न ल्यौं (लूं), सो गोरस न ग्रहै, तातैं तत्त्व है सो तीनौं कौं लिये है। पय है सो गोरसका पर्याय है, दही पर्याय है। एक पर्यायमात्र ग्रहैं गोरसकी सिद्धि नाहीं, सब गोरस नांहीं आवै। तैसैं एक उत्पादमें अथवा व्ययमें अथवा ध्रुवमें वस्तुकी सिद्धि नाहीं, वस्तु तीनौंतै सिद्ध है। जैसैं पंचवर्णका चित्र है, एक ही वर्ण ग्रहेतैं चित्र गह्या न जाय। तैसैं तीनों (उत्पाद

अथ द्रव्यके सत्उत्पाद-असत्उत्पाद दिखावैं हैं:—

यह द्रव्यका सत्स्वभाव अनादि निधन है, द्रव्य गुण अन्वय शक्तिकौं लियैं हैं, सो पर्याय क्रमवर्ती सौं व्याप्त हुवा भी द्रव्यार्थ (थिक) नय करि अपनें वस्तु सत्करि जैसा है तैसा उपजै है। पर्यायकी अपेक्षाकरि उपजना ऐसा है, पर अन्वयी शक्तिमें जैसाका तैसा है तौ भी ल्याया है। पर्याय शक्तिमैं असत् उत्पाद बताया है, (सो) पर्याय और और उपजैं हैं। तातैं कहा है, पर अन्वयी शक्तिसौं व्याप्त है। पर्यायार्थिकनयकरि है।

कोई प्रश्न करै--[कि] ज्ञेय ज्ञानविषैं विनशै है, उपजै है? उपजै हैं तहाँ असत् उत्पाद है। ज्ञेय [ज्ञान] विषैं न आया, ज्ञेय उपजैतैं उपज्या (उत्पन्न हुआ) कहा, या पर्यायज्ञानकी करि। ताका समाधान—द्रव्यकरि सत् उत्पाद है, पर्यायतैं असत् उत्पाद है। ज्ञेय-ज्ञायक उपचार सम्बन्ध है। उपचारकरि ज्ञेय ज्ञानमें, ज्ञान ज्ञेयमें, तातैं वस्तुत्वतैं सत् उत्पाद है, पर्यायकरि असत् उत्पाद है। यहाँ कोई प्रश्न करै है, पर्याय विना द्रव्य नहीं, द्रव्यकी पर्यायतैं सिद्धि है। यातैं पर्याय

"निर्विशेषं हि सामान्यं भवेत् ष (ख) र विषाणवत् ।
सामान्यरहित्तत्वात् विशेषं तद्वदेव हि ॥ १ ॥"

सामान्य विशेषका स्वरूप लिखिये हैः—

वस्तु यह वस्तुका सामान्य है, 'सामान्य-विशेषात्मकं वस्तु' यह कहना सो वस्तुका विशेष कथन है। अस्ति इति सत् यह सामान्यसत् कहना, नास्ति अभाव सत यह विशेषसत कहना। देखवेमात्र दर्शन यह सामान्यदर्शन, स्व-पर-सकल ज्ञेयकों देखै, यह विशेष दर्शन। जानवेमात्र ज्ञान सामान्य, स्व-पर सकलज्ञेयकौं जानै, सो विशेष ज्ञानकौ कहिये। याही प्रकार सब गुणमें सामान्य-विशेष है, सामान्यविशेषकरि वस्तु प्रगटै है सो कहिये है। सामान्य ही कहिये तौ विशेष विना वस्तुका गुण न जान्या परै, गुणबिना वस्तु न जाणैं, तातैं सामान्यकौ विशेष प्रगट करै है। सामान्य न होय तौ विशेष कहाँ तैं होय? विशेषकौ सामान्य प्रगट करै है, तातैं सामान्य-विशेषमई वस्तु है।

यहाँ कोई प्रश्न करै है [कि] सामान्य तौ अन्वयशक्तिकौं कहिये, विशेष व्यतिरेक शक्तिकौं

सामान्य विशेषरूप वस्तुपर अनंतनय

ज्ञानसामान्य ग्राहक नयकरि ज्ञान सामान्य रूप कहिये, ज्ञान विशेष ग्राहक नयकरि ज्ञान विशेषरूप कहिये। अनंत गुणनमें अनंत सामान्य-विशेष नयकरि सामान्य-विशेष दोऊ भेद साधिये। पर्याय सामान्य ग्राहक नयकरि परिणमन रूप पर्याय, पर्यायविशेष ग्राहक नयकरि गुण-पर्याय, द्रव्यपर्याय, अर्थपर्याय व्यंजनपर्याय, एक गुणकी अनंत पर्याय सर्व लीजे। सामान्य संग्रह नयकरि द्रव्य परस्पर अविरुद्ध कहिये, विशेष संग्रह नयकरि जीव सब परस्पर अविरुद्ध कहिए। नैगमनय तीन प्रकार [है] भूत, भावि, वर्तमान। भूतनैगम यथा—आज–दीपमालिकाके दिन वर्द्धमानजी मोक्ष गया। भावि तीर्थंकरजीनै वर्तमानकरि मानिजै, भाविनैगम कहिजे (ये)। वर्तमान नैगमकरि 'ओदनं पच्यते' भात है छै यों कहिये। नैगम दोय प्रकार-द्रव्यनैगम, पर्यायनैगम। द्रव्यनैगमका दोय भेद शुद्धद्रव्यनैगम, अशुद्धद्रव्यनैगम। पर्यायनैगमका (के) तीन भेद, अर्थपर्यायनैगम, व्यंजनपर्यायनैगम, अर्थव्यंजनपर्यायनैगम।

अभेद है। सब परमाणु सत्ता गौण उत्पाद-व्यय ग्राहक नयकरि अनित्य है तहाँ अशुद्ध द्रव्यार्थ है। द्व्यणुकादि सापेक्ष अशुद्धद्रव्यार्थनयकरि स्कंधादि अशुद्ध पुद्गल द्रव्य कहिये। भेदकल्पना अशुद्ध द्रव्यार्थनयकरि गुणकौ भेद गुणीसौं कीजिये। स्व-द्रव्यादिचतुष्टयग्राहकनयकरि अस्ति कहिये, पर-द्रव्यादि [चतुष्टय] ग्राहक नयकरि नास्ति कहिये। अन्वयद्रव्यार्थ नयकरि गुण पर्याय स्वभाव लियें द्रव्य है परमभाव ग्राहक द्रव्यार्थनयंकरि मूर्ति जड स्वभाव पुद्गल है।

व्यवहारनय[2]

पर्यायार्थनयके अनेक भेद तथा गुणकेभेदकरि व्यवहारनय कहिये। सामान्यसंग्रह भेदक व्यवहार जीव अजीव द्रव्य कहिये। विशेषसंग्रह भेदक व्यव-हार जीव संसारी मुक्त रूप कहिये। शुद्धसद्भूतव्य-वहार यथा शुद्ध गुण शुद्ध गुणी भेद कीजे, अशुद्ध-सद्भूतव्यवहार यथा मत्यादि गुण जीवके कहिए। व्यौहार (व्यवहार) के अनेक भेद हैं।

१ पाटनीजी वाली प्रतिमें इन्वर्टेट कौमाज वाली पंक्ति नहीं है।

२ आत्मावलोकन पत्र २१ से २५ तक यह कथन है।

हारनाम पावैं। गुण बंध्या गुण मोक्ष द्रव्यबंध्या द्रव्यमोक्ष ऐसैं सर्व भावहीकौं भी व्यवहार कहिये! अवरु चिरकाल भावकै वशनैं स्वभावकौं छोड़करि, द्रव्य गुण पर्यायहीकौं अवरु भाव कहिए-ज्ञानीकौं अज्ञानी, सम्यक्तीकौं मिथ्यात्वी,स्व समयीकौं परसमयी, सुखीकौं दुःखी। अनंतज्ञान-दर्शन-चारित्र सुख वीर्यहीकौं कलिपयकरि कहिये-ज्ञानकौं अज्ञान, सम्यक्तकौं मिथ्यात्व, स्थिरकौं चपल,सुखकौं दुःख, उपादेयकौं हेय, अमूर्तिककौं मूर्तिक, परमशुद्धकौं अशुद्ध, एक प्रदेशी पुद्गलकौं बहु प्रदेशी, पुद्गलकौं कर्मत्व, एक चेतनरूप जीवकौं मार्गणा, गुणस्थानादि जावंत (यावत) परिणतिकरि निरूपणा। अवरु एक जीवकौं पुण्य-पाप-आश्रव-संवर-बंध-मोक्ष परिणति करि निरूपणा। अरु जावंत वचनपिंड कथन सौ सर्व व्यवहार जानना, अवरु आत्मासौं जु अवरु (अन्य) सो सर्व व्यवहार नाम पावै, अवरु एक सामान्यसौं, समुच्चयसौं व्यवहारका इतना अर्थ जानना। इतना द्रव्य व्यवहार जानना, जो भाव अव्यापकरूप संबंधः वस्तुसौं व्याप्य-व्यापक एकमेक संबंध नाहीं, सो व्यवहार नाम पावै। ऐसा व्यवहारभावका कथन द्वादशांग

विषैं चलै है सो जानना। इति व्यवहार ॥७॥

निश्चयनयं[1]

जेसिं गुणाण पचयं णियसहावं अभेय भावं च।
दव्वपरिणामणा वीणं तण्णिय भणियं ववहारेण ॥१॥
येषां गुणानां प्रचयं निजस्वभावं च अभेदभावं च।
द्रव्यपरिणामणाधीनं तं निश्चय भणितं व्यवहारेण ॥

"येषां गुणानां प्रचयं एक समूहतः निश्चयः पुनः। येषां द्रव्यं गुणपर्यायानां निजस्वभावं निज-जाति स्वरूपं निश्चयः। पुनः येषां द्रव्यगुणानां गुणशक्तिपर्यायाणां यः अभेदभावं एक प्रकारं तन्निश्चयः। पुनः येषां द्रव्याणां ये द्रव्य परिणा-माधीनं तस्य द्रव्यस्य परिणाम आरूपभावतः निश्चयं। एतादृशा निश्चयं व्यवहारेण वचन-द्वारेण भणितं वर्णितं॥"

जिन निज अनंत गुणहिंका(गुणोंका)जो आपस विषैं एकही समूह पुंजसौं निश्चयका रूप जानना। एक निज द्रव्यके अनंतगुण पर्यायहीकी जु (जो) केवल निजजातिस्वरूप,सौं भी निश्चयका रूप

[1] आत्मावलोकन पत्र २६ से ३२ तक यह कथन है।

जानना। एक निज द्रव्यके अनंत गुणहीकौं एक कहना। गुणकी अनंत पर्यायहीकौं जो एकही स्वरूपकरि भावको, उसही द्रव्यके परिणाम परिणमै, अवरु परिणाम न परिणमै सो निश्चय जानना। ऐसैं-ऐसैं भावहीकौं निश्चयसंज्ञा कही वचनद्वारकरि।

भावार्थ—भो संत ! जो ए निज-निज अनंतगुण मिल भया एक पिण्ड भाव, एक संबंधही सो गुणी (ण) ही का पुंज कहिये। तिस गुण पुंजकौं वस्तु ऐसा नाम कहिये। सो यह वस्तुत्व नाम गुणहीके पुंज बिन अवरु कौन कहिये। इस गुण पुंजकौं वस्तु कहिये। सो इस वस्तुकौं निश्चयसंज्ञा जाननी। अवरु जो जो जिस जिस स्वरूप (कौ) धरैं जो जो गुण उपज्या है सो सब अपना अपना रूप धरैं, गुण अवरु गुणतैं ही अपना जुदारूप अनादि-अनंत रहै है, ऐसा जो जुदा रूप सो निजजाति कहिये। आपही आप अनादिनिधन है, सो रूप किसी अवर किसी रूपसौं न मिलै। अवरु जो रूप सोई गुण, जो गुण सोई स्वरूप, ऐसा जो है तादात्म्यलक्षण। अवरु जो कोई तिस रूपकी नास्ति चिंतवै तौ गुणकी नास्ति

इसो जीव वस्तुके परिणाम रंजक संकोच, विस्तार, अज्ञान, मिथ्यादर्शन, अविरतादि चेतन विकार भए परिणवे है, सो ऐसा चेतन विकारभाव तिस चेतन द्रव्यके परिणामही विषैं तौ पाइये। न कबहूं अचेतन द्रव्यके परिणाममें दिखाइये, यह निःसन्देह है। ऐसै जु है विकारभाव अपनेंही अपने द्रव्य परिणामविषैं होय, तिसी-तिसी द्रव्यपरिणामाश्रित पाइए, सो भी निश्चयसंज्ञा नाम पावे। इति निश्चयः॥ चकारात् अवरु निश्चयभाव जानने।

जेतीक निज वस्तुकी परिमिति तेतीक परिमित ही विषैं द्रव्य-गुण-पर्याय हीका व्याप्य-व्यापक होय वर्तै ही है। अपनी अपनी सत्ताईके विषैं व्याप्य-व्यापक होय अनादि अनंत ही रहे है, यह भी निश्चय कहिये। अवर जो भाव जिसभावका प्रतिपत्ती वैरी सो तिसीकौ वैर करै, औरकौ न करै, सो भी निश्चय कहिये। और जिसकालविषैं जैसी होनी है त्यौंही होय जो भी, सो भी निश्चय कहिए है। अवरु जिस जिस भावकी जैसी जैसी रीतिकरि प्रवर्तना है तिसी तिसी रीति पाय परिणवैं सो भी निश्चय कहिये। अवरु एक आपकौ स्व-

तीनों भेदविषैं एकही स्वभाव देखिये। भेद ये तीनों एक भावके निपजे, ऐसा एक भाव भी निश्चय कहिये। स्वभाव गुप्त है वा प्रगट परिणमै है ये नास्ति नाहीं, सो ऐसा अस्तित्वभाव निश्चय कहिये। ऐसैं ऐसैं भावही कौ निश्चय संज्ञा जाननी, जिनागमविषैं कही है।

* इति निश्चय संपूर्ण *

अथ सुखाधिकारः

ऋजुसूत्रनय कहिए है—समय समय प्रणति होय सो सूक्ष्म ऋजुसूत्र भेद है, बहुत काल मर्याद लियें होय स्थूलपर्याय सो स्थूल ऋजुसूत्र कहिये। दोषरहित शुद्धशब्द कहिये सो शब्दनय कहिये, जेते शब्द तेती नय।

नाना अर्थ तामें एकअर्थ मुख्य आरूढ़ होय ताकूं समभिरूढ़ कहिए। जैसैं गोशब्दके[1] अनेक

[1] गो शब्द अनेक अर्थोंमें रूढ़ है-यथा-गाय, किरण, इंद्रिय, वाणी, सरस्वती, पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग, जल, दिशा, माता, सूर्य, चन्द्रमा, तीर, वज्र

सं० हिन्दी शब्द सागर पृष्ठ ३२८

गो धर गो तरु गो दिसा गो किरना आकास।
गो इन्द्री जल छन्द पुनि गो बानि जन भास ॥ ५ ॥

अनेकार्थ नाममाला, भगवतीदास

अर्थ हैं। पर गायविषैं समभिरूढ़ है, ता समभि-रूढ़के अनेकभेद हैं सादिरूढ़, अनादिरूढ़, सार्थिक-रूढ़, असार्थिकरूढ़, भेदरूढ़, अभेदरूढ़, विधिरूढ़, प्रतिषेधरूढ़ इत्यादि भेद हैं।

एवंभूत—जैसा पदार्थ होय तिसौ निरूपण। जैसैं-इंदतीति इंद्रः न शक्रः सो एवंभूत कहिये।

पर्यायार्थिकनयके छै (छह) भेद हैं—अनादि-नित्यपर्याय, यथा-नित्य मेरू आदि १। सादि-नित्यपर्याय, यथा-सिद्ध पर्याय। सत्वा गोणत्वेन उत्पाद व्यय-ग्राहक-स्वभावोत्पत्ति शुद्धपर्यायार्थिक यथा-समयं समयं प्रति पर्याया विनाशिनः, सत्ता-सापेक्ष स्वभावानित्य अशुद्धपर्यायार्थिक-यथा एकस्मिन् समये त्रयात्मकः पर्यायार्थिक ॥ छ ॥ कर्मोपाधि निरपेक्षस्वभावो नित्य शुद्ध द्रव्य पर्या-यार्थिक–यथा सिद्ध पर्याया सदृशा शुद्धः संसारिणां पर्याया ॥ छ ॥ कर्मोपाधि सापेक्षस्वभावा वा नित्यमशुद्धं पर्यायार्थिक–यथा संसारिणां उत्पत्ति मरणे स्तः ॥छ॥ पर्यायार्थिकका (के) भेद छ (छह) हैं। इन नयनमें (नयों में) पूर्व-पूर्व विरुद्ध महाविषय उत्तर-उत्तर सूक्ष्माल्प अनुकूलविषय

कहिये। इन नय-प्रमाणकरि, युक्तिताकरि शिव-साधन होय, तासौं अनंतगुण सुद्ध होय। तिस अंनंत गुणकी शुद्धताको फल सुख है सो कहिये हैः- सो वस्तुकौं देखता जाणता परिणवता सुख होय, आनंद होय, सो अनौपम्य (उपमा रहित) अबाधित, अखंडित, अनाकुल, स्वाधीन है। सर्व द्रव्य गुण पर्यायकौ सर्वस्व है, जैसैं सब उद्यम फल विना वृथा होय, फलयुक्त कार्यकारी होय। तैसैं सुख कार्यकारी वस्तु है॥ इति सुखाधिकारः॥

जीवन शक्ति कहिये हैं

यह आत्मा अनादिनिधन है, अनंतगुणयुक्त है, एक एक गुणमें अनंत शक्ति है। प्रथम जीवन-शक्ति (गुण) है, यह आत्माकूं कारणभूत चैतन्य-मात्र भाव है, सो ता भावकी धरणहारी जीवन-शक्ति है, ता जीवनशक्तिकरि जीव आयो, जीवै है, जीवैगो, सो जीव कहिये। सो यह जीवनशक्ति चित्तप्रकाशमंडित द्रव्यविषैं है, गुणविषैं है, पर्याय विषैं है, तौ यह सब जीव भये। जीव एक है, जो जीव तीन भेदमें होय तौ तीन प्रकार होय, सो यों तौ नाहीं। द्रव्य-गुण-पर्याय जीवकी अवस्था

कही ? ताको समाधान—चैतन्यशक्ति जो है सो जड़के अभावतैं है। अर ज्ञान चेतनादि अनंत चेतनाकौं लिए है. सो अनंत चेतनाका प्रकाशरूप चिद शक्ति होय तौ जीवनशक्ति रहै. चेतनाके अभावतैं जीवका अभाव है, चेतना प्रकाशरूप है, अनंतगुण पर्याय चेतना प्राणधारणकरि जीवन-शक्ति सदा जीवै है। विशेष गुणतत्त्व पर्यायतत्त्व-रूप द्रव्यतत्व तीनों सधी जीवतत्त्व जीवनशक्ति प्रकाशै है सो चेतना लक्षणका प्रकाश प्रकाशित रहै सदा, तब जीवत्व नाम पावै; यातैं चेतना लक्षण है जीववस्तुका। अर चिदशक्ति जुदी कही, सो चेतनशक्ति अपनी अनंत प्रकाशरूप महिमाकौ धरै है, ताके दिखायवेके निमित्त जुदी कही, पर देखिये तौ यह लक्षण जीवनशक्तिहीका है, जैसैं सामान्य चेतना चेतनाका पुंजरूप है अरु विशेष चेतना ज्ञान, चेतना दर्शन, चेतना अनंत-रूप है। सामान्यचेतनातैं विशेषचेतना जुदी नाहीं। विशेष चेतनाविना, चेतनाका स्वरूप जा-न्या न परै। तैसैं जीवनशक्तितैं चेतना भाव जुदा नाहीं। पर चेतनाभावका विशेष कहे बिना जीव-न शक्तिका स्वरूप जान्या न परै। यह जीवनश-

है, अर जीव तीनौं रूप एकवस्तु है, जैसें गुणभेद अनंतकौं लिये है, तैसैं जीवमें भेद नाहीं, जीवका स्वरूप अभेद है। यहाँ कोई प्रश्न करै है [कि] जीव अभेदरूप है तौ भेद विना अभेद कैसैं भया? गुण अनंत न होते तौ द्रव्य न होता। पर्याय न होती तब जीववस्तु भी न होता, तातैं पर्यायभेद कहैं अभेद सधै है। ताको समाधान हो शिष्य! भेद विना अभेद तौ न होय, पर भेद वस्तुका अंग है। अनेक अंगकरि एकवस्तु कहिये, ताको दृष्टांत, जैसैं एक नगर ताके पहले (मे) वहो (हु) न हैं नामें घर वहोन हैं सो जुदे जुदे अंग में नगर न होय, सबकौ एक भावरूप नगर है, जैसैं "एक नरके अनेक अंग हैं, एक अंगमें नर न। सब अंगरूप नर है। तैसैं" द्रव्यरूप, पर्यायरूप जीव नाहीं, जीववस्तु द्रव्य-गुण-पर्याय का एकत्व है, एक अंगमें जीव होय तौ ज्ञानजीव, दर्शनजीव, यौं अनंतगुण अनंतजीव होय, तातैं अनंतगुणका पुंज जीववस्तु है।

यहाँ कोई प्रश्न करै—जो चेतनाभाव ज लक्षण कह्या, तौ चेतन (चैतन्य) शक्ति जुदी क्यों

१ इन्वर्टेट कौमाज वाली पंक्ति पाटनीजीकी प्रतिमें नहीं है।

कही ? ताको समाधान—चैतन्यशक्ति जो है सो जड़के अभावतैं है। अर ज्ञान चेतनादि अनंत चेतनाकौं लिए है. सो अनंत चेतनाका प्रकाशरूप चिद शक्ति होय तौ जीवनशक्ति रहै, चेतनाके अभावतैं जीवका अभाव है, चेतना प्रकाशरूप है, अनंतगुण पर्याय चेतना प्राणधारणकरि जीवन-शक्ति सदा जीवै है। विशेष गुणतत्त्व पर्यायतत्त्व-रूप द्रव्यतत्व तीनों मयी जीवतत्त्व जीवनशक्ति प्रकाशै है सो चेतना लक्षणका प्रकाश प्रकाशित रहै सदा, तब जीवत्व नाम पावै; यातैं चेतना लक्षण है जीववस्तुका। अर चिदशक्ति जुदी कही, सो चेतनशक्ति अपनी अनंत प्रकाशरूप महिमाकौ धरै है, ताके दिखायवेके निमित्त जुदी कही, पर देखिये तौ यह लक्षण जीवनशक्तिहीका है, जैसैं सामान्य चेतना चेतनाका पुंजरूप है अरु विशेष चेतना ज्ञान, चेतना दर्शन, चेतना अनंत-रूप है। सामान्यचेतनातैं विशेषचेतना जुदी नाहीं। विशेष चेतनाविना, चेतनाका स्वरूप जा-न्या न परै। तैसैं जीवनशक्तितैं चेतना भाव जुदा नाहीं। पर चेतनाभावका विशेष कहे विना जीव-न शक्तिका स्वरूप जान्या न परै। यह जीवनश-

द्रव्यपर प्रगट करै है। सो एक अचल द्रव्यका प्रभुत्व अनेक स्वभाव प्रभुत्वकौ कर्ता प्रवर्तै है, सो सब प्रभुत्वका पुंज द्रव्य प्रभुत्व है। आगे गुणका प्रभुत्व कहिये है—सो प्रथम सत्तागुणका प्रभुत्व कहिये है, द्रव्यका सत्ता लक्षण है, सो सत्तालक्षण अखंडितप्रताप स्वतंत्र शोभित है, सो सामान्य-विशेष प्रभुत्वकौं लिये है, सो सत्ताका सामान्यप्रभुत्व कहिये है। सत्ता अखंडित-प्रतापकौं लिये है, स्वतंत्र शोभा लिये है स्वरूपरूप विराजै है. तामें द्रव्यसत्व, पर्यायसत्व गुणसत्व का विशेष कहणा (ना) न परै, सो सामान्यसत्व-का प्रभुत्व है। द्रव्यसत्वका प्रभुत्व तौ द्रव्यका विशेषण पूर्व किया, तामें जाणियों। सब गुणसत्व-का प्रभुत्व कछु कहिए है:—गुण अनंत हैं, एक प्रदेशत्व गुण है ताको जो सत्त, प्रदेशसत्त (त्व) कहिये। एक-एक प्रदेशमें अनंतगुण अपनी महिमा कौं लियें विराजै है, एक-एक गुणमें अनंतशक्ति, प्रतिशक्ति है। अनंतमहिमाकौं लियें एक-एक शक्तिके अनंत पर्याय हैं, सो सब एक-एक प्रदेशमें है, ऐसैं असंख्यातप्रदेश अपने अखंडितप्रभुत्व लियें अपने प्रदेशसत्ताके आधार हैं, तातैं प्रदेश-

सत्वको प्रभुत्व सब गुणके प्रभुत्वकौ कारण है। सूक्ष्मसत्ताकौ प्रभुत्व भी अनंतगुणके प्रभुत्वकौ कारण है। सूक्ष्मगुण न होय तौ सब थूल (स्थूल) होय. इंद्री (इंद्रिय) ग्राह्य होय. तब अपनी अनंतमहिमाकौन धरे, तातैं सब गुण अपनी अनंत महिमाकौं लियें सूक्ष्म सत्ताके प्रभुत्वतैं है। ज्ञान-का सत सूक्ष्म है. तब इंद्री ग्राह्य नै (नहीं) है, ऐसैं अनंतगुणका सत सूक्ष्म है। तब अनंतमहिमा कौं लिए है. यातैं अनंतगुणकी सत्ताकौ प्रभुत्व-एक सूक्ष्मसत्ताकी प्रभुतातैं है। तातैं ऐसैं सब गुण कौ प्रभुत्व न्यारो-न्यारो जाणो, बहुत विस्तारके वास्ते न लिख्यौ है। पर्यायकौ परिणामनरूप वेदक भावकरि स्वरूपलाभ. विश्राम थिरतारूप वस्तुके सर्वस्वकौं वेदि प्रगट करैं है। ऐसैं अखंडित प्रभुत्वकौ धरैं है, सो पर्यायकौ प्रभुत्व कहिये, इसी प्रभुत्वशक्तिकौ जानै जीव अपने अनंत प्रभुत्वकौ पावै है।

आगे वीर्यशक्तिका स्वरूप कहिये:—

अपने स्वरूपकी निष्पन्न करनहारी सामर्थ्य

रूप वीर्यशक्ति, सो सामान्य विशेष दोय भेदकौं लिये है। वस्तुके स्वरूपको निष्पन्न राखिवेको सामर्थ्य, सो तौ सामान्यवीर्यशक्ति है। विशेष-वीर्यशक्तिके तीनभेद हैं, द्रव्यवीर्यशक्ति, गुणवीर्य-शक्ति, पर्यायवीर्यशक्ति। क्षेत्रवीर्य, कालवीर्य, तपवीर्य, भाववीर्य इत्यादि विशेष हैं, सो केइयक विशेष लिखिये है। प्रथमही द्रव्यवीर्य लिखिये है, द्रव्यवीर्य गुण-पर्याय वीर्यका समुदाय है। यहाँ कोई प्रश्न करै है, गुण-पर्ययाकौ द्रवै व्यापै सो द्रव्य है, अरु गुण-पर्यायका समुदाय भी द्रव्य है, गुण-पर्याय समुदाय अरु व्यापना विशेष जुदा है, सो कहा द्रव्यभी जुदा है, ताको समा-धान—व्याप[क] भाव के दोय भेद हैं, भिन्नव्यापक, अभिन्नव्यापक। भिन्न-व्यापकके दोय भेद हैं, बंधव्यापक, अबंधव्यापक। जैसे तिलविष तेल बंध-व्यापक है, तैसैं आत्मा देह विषै बंधव्यापक है, धनादिक विषैं अबंधव्यापक है। अशुद्ध अवस्थामैं, यहाँ शुद्धमें अभिन्न व्यापक है गुण-पर्यायसौं अभिन्न व्यापकके दोय भेद हैं—एक जुगपत सर्वोदेश व्यापक है, दूजा क्रमवर्ती एकोदेश व्यापक

१ स्वरूपनिर्वर्तनसामर्थ्यरूपा वीर्यशक्तिः।

—समयसार आत्मख्याति टी० पृ० ५५६

है। द्रव्य-गुणमें जुगपत् सर्वोदेशव्यापक है, पर्या यमें क्रमवर्तीव्यापक है, काहेतैं ? सर्वगुण-पर्याय का एक द्रव्य निपजा (उत्पन्न हुआ) है। तातैं सर्व क्रमव्यापक अभिन्नता गुण-पर्यायसौं भई, तब गुण-पर्यायका समुदाय आया व्यापकपणामें, तातैं व्यापकता गुण-पर्याय कहने मात्र भेद है। वस्तुके स्वभाव अन्य अन्य भेदकरि सत्ता अभेदकरि सिद्ध है। द्रव्यका विशेष पूर्व कह्या, तिसके राखिवेकी सामर्थ्यता द्रव्यवीर्य शक्ति है।

कोई प्रश्न करै है, यह द्रव्यवीर्य भेद है कि अभेद है ? अस्ति है वा नास्ति है ? नित्य है वा अनित्य है ? एक है वा अनेक है ? कारण है वा कार्य है ? सामान्य है वा विशेष है ? ताकौ समाधान कीजे (जिये) है द्रव्यवीर्य सामान्यताकरि कहिये तब तौ अभेद है, अरु गुणसमुदायकी विवक्षाकरि कहिए, तब भेद है, पर (परन्तु) गुणका भेद जुदा है, तातैं इस विवक्षामें भेद आया, पर अभेदके साधवेके निमित्त यह भेद है, भेद-बिन अभेद न होय, यातैं भेद-अभेद कहिये। अपने चतुष्टयकरि अस्ति है, परचतुष्टयकरि नास्ति, द्रव्यवीर्यकरि नित्य है, पर्यायवीर्य भी इस

द्रव्यवीर्यमें आया है, तिसकरि अनित्य है, पर द्रव्यवीर्य नित्य है ताकौं पर्यायवीर्य भी साधै है, तातैं अनित्य-नित्यकौ साधन है। इसका नित्यानित्यात्मक स्वभाव है, अनेक धर्मा है। उक्तं च नयचक्र में—

'नानास्वभावसंयुक्तं द्रव्यं ज्ञात्वा प्रमाणतः।

इति वचनात्। पर्याय स्वभावकरि अनित्य है। कोई प्रश्न करै है कि पर्यायकौं अनित्य कहौ, द्रव्यको मत कहौ, ताको समाधान—उपचारकरि द्रव्यकौ कहिये। लक्षणकरि पर्यायकौं कहिये, तहाँ और प्रश्न भया, उत्पाद-व्यय-ध्रुव सत्ताका लक्षण है, सत्ता द्रव्यका लक्षण है, पर्यायका लक्षण मत कहौ, ताको समाधान कीजिये हैः—

उत्पाद-व्यय भी पर्यायसत्ताहीका लक्षण उपचारकरि द्रव्यमें कहिये। नयचक्रमें कह्या है, "द्रव्ये पर्यायोपचारः पर्याये द्रव्योपचारः।" यातैं उपचारकरि कहिये है।

अनित्यद्रव्य मूलभूत वस्तु नाहीं, ऐसैं जानना। द्रव्यकरि एक है। पर्याय-गुण स्वभावकरि अनेक है, अनेक स्वभावकरि एक है, तातैं अनेक उपचारकरि कहिये। स्वभाव एक साधवेके निमित्त

अनेकपणा ऐसा उपचारकरि साध्या है। कारण रूपद्रव्य पूर्व परिणामकरि युक्त है। कार्यरूप द्रव्य उत्तर परिणामकरि युक्त है, कारणकार्य, द्रव्यहीमें हैं, तातैं द्रव्यमें कारण कार्य स्वभाव करि साधिये [तौ] दोष नांही। पूर्व परिणामग्राहकनय उत्तर परिणाम ग्राहक नयकरि साधिये। सामान्य द्रव्यवीर्यकौं विशेष गुण पर्याय वीर्यकरि कहिये, नयकी विवक्षा- सामान्य-विशेषरूप इसहीका है। ये सब द्रव्य- वीर्यके विशेषण नयकरि कहिये॥

आगे गुणवीर्यका विशेष कहिये है—गुणके राखवेकी सामर्थ्य सो गुणवीर्य कहिये, सा- मान्य-विशेषगुण वीर्य कहिए है। ज्ञानगुणमें ज्ञा- पकताकौ राखवेकी सामर्थ्य सो ज्ञानगुणवीर्य। देखवेकी शक्ति दर्शनमें है ताकौं राखवेकी साम- र्थ्य सो दर्शन वीर्य, सुखकौं राखवेकी सामर्थ्य सो सुखवीर्य, इत्यादि गुणकौं राखवेकी सामर्थ्य सो विशेष गुणवीर्य है। एक-एक गुणमें वीर्य शक्ति के प्रभावकरि ऐसी सामर्थ्य है सो कहिये है, एक सत्तागुण वीर्यके प्रभावकरि ऐसी महिमाकौ धरै हैं, द्रव्यसत्तावीर्यके प्रभावतैं द्रव्य, हैपणाकी सामर्थ्यता आई। गुणसत्ता वीर्यके प्रभावतैं गुण- के हैपणाकी सामर्थ्यता आई। पर्यायसत्तावीर्यके

प्रभावतैं पर्यायके हैपणाकी सामर्थ्यता आई। एक सूक्ष्मगुण सत्तावीर्यमें ऐसी शक्ति है सब गुण सूक्ष्म हैं,ऐसी सामर्थ्यता भई। ज्ञान सूक्ष्म है ऐसी सामर्थ्यता आई,इत्यादि सब गुणमें वीर्यसत्ताका प्रभाव फैल रह्या है,याही प्रकार सब गुणमें अपना-अपना गुण गुणका वीर्य अनंतप्रभावकौं धरै है। विस्तारके वास्ते न लिख्या है। ज्ञान असाधारण गुण है सत्ता साधारण-गुणहै। इनमें सत्ताकी मुख्यता लीजे तब कहिये,ज्ञान सत्ताके आधार है तातैं सत्ता प्रधान है। द्रव्य-गुण-पर्यायको रूप राखै है, ज्ञानकौं भी रूप राखै है, तातैं असाधारणतैंसाधारण है। फिर ज्ञानकी प्रधानता कहिये है, जो ज्ञान न होता तौ सत्ता अचेतन न होय वर्तता, या चेतना ज्ञानतैं है। चेतनातैं चेतनाकी सत्ता है, तातैं चेतनसत्ता राखवे कौं ज्ञानचेतना कारण है। सर्वज्ञ शक्ति ज्ञानतैं है, सबमें प्रधान है, पूज्य है, सो ज्ञान होय तौ सब गुण होय, जैसैं निगोदियाके ज्ञानहीन है तौ सब गुण दबे है। ज्ञान बढ्या तब गुण बढ़ते गये ज्यों-ज्यों स्वसंवेदज्ञान बढ्या त्यों-त्यों सुखादि सब गुण बढ़े, बारमैं (बारहमें गुणस्थानमें) चारित्र शुद्ध भया, पर ज्ञानबिना अनंतसुख नाम न पाया।

आवै है। ताको समाधान—द्रव्य-गुण-पर्यायरूप वस्तु, सो पर्यायपरिणामद्रव्यवेदना,गुणउत्पादादि पर्याय; 'सो पर्यायनै वस्तु संज्ञा या विवक्षाकरि कहिये'। परिणाम सत्ता अभेद है तीनोंकी, सो वस्तु संज्ञा परिणामस्वरूपकौं परिणाम अपेक्षा कहिये, द्रव्यअपेक्षा परिणामकौं वस्तु न कहिये, जो या अपेक्षा भी वस्तु न कहिये तौ परिणाम कोई वस्तु नाहीं, नाश होय है। तातैं विवक्षातैं प्रमाण है, द्रव्यरूप नाहीं, पर्यायवस्तु है, अनंत-गुण-ध्रुवरूप वस्तुकौकारण वस्तु है, कार्य नाहीं, ध्रुवरूप एक या विवक्षा जुदी है। कार्यपरिणाम ही दिखावै है या विवक्षा जुदी है सो पहलैं कह्या है। नानाभेदसौं नानाविवक्षा है, नयके जाननेतैं विवक्षा जानी परै है. तातैं वस्तु द्रव्यात्मक नहीं है पर्याय-रूप यह कथन सिद्ध भया।

पर्यायका क्षेत्र-काल, भाव कहा है ? सो कहिये है, उपजनेंका क्षेत्र तौ द्रव्य है, स्वरूपक्षेत्र प्रदेश, प्रदेशमें परिणामशक्ति है, शक्तिस्थान ही क्षेत्र है। काल-समय-मर्याद है, निज-वर्तनाकी मर्याद काल है। भाव, सर्वप्रगट सर्वस्व परिणमन सब निजलक्षण अवस्था मंडित है सो भाव कहिये।

देवादिका नारकीका दुख मेटि सकै नाहीं, उस क्षेत्र का ऐसा प्रभाव है, अर स्वर्गभूमिका में सहज-शीतादि वेदना नांही [ऐसा उस] क्षेत्रका प्रभाव है;तातैं आत्मप्रदेशका क्षेत्र है तिसका प्रभाव ऐसा है. अनंत चेतना गुण द्रव्य पर्यायका विलासप्रगट करै है,एता विशेषनरकादि क्षेत्रभिन्न वस्तुकौ कारण है, आत्मप्रदेशक्षेत्र गुणपर्यायसौं अभिन्न है, इस प्रदेश क्षेत्रमें उत्पाद व्यय ध्रुव भी सधै है, उपचारकरि एक प्रदेश मुख्य है ताका उत्पाद, दूजे प्रदेश की गौणता सो व्यय गिणिये, ध्रुव अनसून (स्यूत) शक्ति मुख्य गौण रहित वस्तुरूप शक्ति है, या प्रकार धारिए ऐसी प्रदेश क्षेत्रकी अनंतमहिमा है। यह प्रदेशक्षेत्र लोकालोक लखि-वेकौं आरसी (दर्पण) है, जा जीवने या प्रदेश या प्रदेशक्षेत्रमें निवास कीना है सो ही अनंत सुखका भोक्ता भया है। ऐसें प्रदेशक्षेत्रकौं राखवे की सामाथ्र्यका नाम क्षेत्रवीर्यशक्ति है। आगैं काल-वीर्य (शक्ति) कहिये हैः—

काल, अपने द्रव्य-गुण-पर्यायकी मर्याद-काल ताके राखवेकी सामथ्र्य ताका नाम कालवीर्य शक्ति है। द्रव्यकी वर्तना द्रव्यका लक्षण, गुणकी वर्त-

एक गुणवस्तु द्रव्यरूप न होय । गुणपुंज, एक गुणमें आवे तौ गुण अनंत अनंत द्रव्य हौंय। गुणपुंज वर्तना द्रव्यकी कौं एक गुणवर्तना न कहिये, काहेतें ? एक गुणरूप द्रव्य न होय। पुंज-गुणकर गुणपुंजमें वर्तै है; तामें द्रव्यविवक्षामें द्रव्य वर्तना गुण विवक्षामें गुण वर्तना पर्यायविवक्षामें पर्यायवर्तना अनेकांतसिद्धि विवक्षातैं है । तातैं गुण-पर्याय-द्रव्यकी वर्तना वा मर्याद कहिए थिति (स्थिति) ताको निष्पन्न (निहपन्न) राखवेकी सामर्थ्य ताका नाम कालवीर्यशक्ति है। आगे तपवीर्यका वर्णन कीजिये है:—

तप निश्चय व्यवहाररूप दोय भेदकों धरै है, व्यवहार बारह प्रकार तप, परीषहसहनरूप तप, ताकरि कर्म निर्जरा जब होय, इच्छा निरोधकरि वर्तै, परइच्छा मेटै, स्वरस भेटै, साधनकरि सिद्धि व्यवहार सांचेनैं होय, ताके निहपन्न राखवेकी सामर्थ्य ताका नाम व्यवहारतपवीर्यशक्ति है याके प्रभावतैं अनेकऋद्धि उपजैं हैं । आगे निश्चय-तपवीर्यशक्तिका स्वरूप कहिए है—तप कहिए तेज, तेज कहिये अपनी भासुर[1] अनंतगुणचेतनाकी

[1] तेजस्वी

ज्ञेयाकार पर्यायकरि ज्ञान होय है सो पर्याय है, तीनों ज्ञानके भावकरि सधै है। भावगुणकरि गुणी सधै है सो द्रव्यकरि भाव है, पर गुणाकरि गुणी ऐसे कहेतैं, भावहीतैं द्रव्यकी सिद्धि; पर्यायकी भी सिद्धि भावहीनैं है। गुणका शक्तिरूप भाव, गुणपर्यायरूप भाव सो गुणभाव कहिये। पर्यायमें जो परिणमनशक्तिका जो लक्षण है सो पर्यायका भाव है। गुण-गुणका भाव जुदा-जुदा है। पर्याय वर्तमानभाव अतीत भावसौं न मिलै, "अतीत अनागतभावसूं, वर्तमान अनागतसों न मिलै,"[1] अनागत, वर्तमान अतीतसौं न मिलै, जो परिणाम वर्तमान है ताका भाव ताहीमें है। भावको निह-पन्न (निष्पन्न) राखवेकी सामर्थ्य ताका नाम भाववीर्य कहिये।

एक गुण में सब गुणका रूप संभवै

वस्तुविषैं अनंतगुण हैं सो एक एक गुणनमें "सब गुणका रूप संभवै है काहेतैं ? जो सत्ता गुण है तौ सब गुण हैं, तातैं सत्ताकरि"[2] सबगुणकी

१, यह पंक्ति पाटनीजीकी प्रतिमें नहीं है। २, ये डेढ़ पंक्ति भी पाटनीजीकी प्रतिमें नहीं है।

ज्ञान द्रव्य, लक्षण गुण, परिणति पर्याय, भेदतैं सधै है। उपचारकरि समस्त ज्ञेयके द्रव्य, गुण, पर्याय ज्ञानमें आये हैं। उपचारके अनेक भेद हैं सो कहिये हैं:—

स्वजातिउपचार, विजातिउपचार, स्वजाति-विजातिउपचार। द्रव्यमें तीनौं उपचार, गुणमें तीनों उपचार, पर्यायमें तीनों उपचार [ऐसैं] नव-भेद भए। नव स्वजाति, नव विजाति, नव स्वजाति-विजाति, नव सामान्य, छत्तीस भेद ज्ञानमें आए, तब ज्ञानमें सधे। गुण ज्ञानदर्शन चेतनाकी अपेक्षा स्वजाति, लक्षणअपेक्षा उपचारकरि विजाति, दोन्यों अपेक्षा स्वजाति-विजाति। एक गुण, द्रव्य-गुण पर्याय साधै, स्वजाति, विजाति, मिश्र ये साधै, तब अनंतगुणमें छत्तीस-छत्तीस भेद उपचारतैं सधैं।

भेद-अभेदतैं-द्रव्यगुण पर्याय सधे सो जाणिये। एक ज्ञान अपनेस्वभावका कर्ता है, ज्ञानका भाव कर्म है, ज्ञान अपने भावकरि आपकौं साधै, यातैं करण आप है। आपका स्वभाव आपकौं सौंपै, संप्रदान आप है, आपके भावतैं आपकौं

साधारणतैं असाधारण है। ये सब द्रव्य गुण पर्याय अपने यथा अवस्थिताकरि स्वच्छ भए, तब परके अभावतैं अभावशक्तिरूप भए। सकल निज वस्तु भाव परअभावकरि चिद्विलासमंडित, स्वरसभरित, त्यागउपादानशून्य, सकलकर्म अकर्त्ता, अभोक्ता, सब कर्ममुक्त आत्मप्रदेश, सहज-मग्न, परमूर्तिरहित, अमूर्तरूप, षट्कारकरूप, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावरूप,-संज्ञा-संख्या-लक्षण प्रयोजनादिरूप, नित्यादि स्वभावरूप, साधारणादि गुणरूप, अन्योन्य उपचारादिरूप ऐसैं अनंतभेद अभेद, सामान्य विशेषादि अनंतनयकरि, अनंत विवक्षाकरि, अनंतसप्तभंग साधिये। अनादि अनंत, अनादिशांत, सादिशांत, सादि अनंत ये च्यार भंग सब गुणमें सधैं है सो कहिये है:—प्रथम ज्ञानमें साधिये है, ज्ञान वस्तुकरि अनादि-अनंत है; ज्ञानद्रव्यकरि अनादि, पर्यायकरि सांत-अनादि-सांत है; पर्यायकरि सादिसांत है; पर्याय करि सादि ज्ञान द्रव्यकरि अनंत है यातैं सादि अनंत है। ये ही दर्शनमें याही रीतितैं जानियों।

सत्तामें साधिये है द्रव्य सत्ता अनादि अनंत;

द्रव्यसत्ता अनादि, पर्यायसत्ता सांत, अनादि-सांत; पर्यायसत्ता सादिसांत; पर्यायसत्ता सादि, द्रव्यसत्ता, गुणसत्ता, अनंत तो सादि अनंत है; या प्रकार सावर्ते प्रश्न उठे है, सत्ता, "है" लक्षण कौं लिये है, सादि सान्तमें सत्ताका अभाव होय है। तहाँ "है" लक्षण नहीं रहे है? ताको समाधान कीजिये है—पर्याय समयस्थायी है, ताकी सत्ता भी समयमात्र काल मर्यादताई, "है" लक्षण कौं लिये है। अनादि अनंतका काल बहुत है, तातैं पर्यायमें न संभवै है, पर्याय समयस्थायी न होय तौ उत्पाद-व्यय-ध्रुव एक समयमें न सधै, तब उत्पाद व्यय ध्रुव बिना सत्ता न होय, सत्ता का नाश भये वस्तुका नाश होय, तातैं पर्यायकी मर्याद समय तातैं सादि सान्तपणा सिद्ध भया। ये सब परिणामशक्तिका भेद है, यामें सब गर्भित है, तातैं याहीके भेद हैं।

आत्माविषैं प्रदेशत्वशक्ति है ताको वर्णन कीजिये है:—

संसार अवस्थामें अनादिसंसारतैं संकोच वि-

स्तार प्रदेश काया, मुक्त भये चरमशरीरतैं किंचित् ऊण आकार धरै है। सो इन प्रदेश एक एक में अनंत गुण है, ऐसैं असंख्यप्रदेश लोकप्रमाण हैं। अभेदविवक्षामें प्रदेशत्व, अर भेद विवक्षामें असंख्य,व्यौहारमें (व्यवहारमें) देहप्रमाण कहिये। अर अवस्थान विवक्षामें लोकाग्रअवस्थानरूप होय निवसै है। एक-एक प्रदेश गणना कियें असंख्य हैं। यहाँ कोई प्रश्न करै है,जिनागममें ऐसैं कह्या है:-

'लोक प्रमाण प्रदेशो हि निश्चयेन जिनागमे'

इस भेदमें असंख्य कहें निश्चय न सधै है, निश्चयमें भेद न सधै है, ताको समाधानः—भेदकरि असंख्य प्रमाण किया कम-ज्यादा नहीं, यह नियमरूप निश्चय जानना।

कोई प्रश्न करै है-एक प्रदेशमें अनंत गुण हैं ते सब प्रदेशमें हैं वे सब आये या कम आये; ताको समाधान-प्रदेश सबमें ज्ञान है, प्रदेश जुदे माने ज्ञान जुदा जुदा होय। ज्ञानप्रमाण आत्माद्रव्य है सो भी जुदा जुदा होय, यों विपरीत होय है, तातैं वस्तुमें असंकल्पना नाहीं, गुणमें भी नाहीं; परंतु परमाणुमात्र गजतैं, प्रदेश वस्तुके गिणें तब येते हैं। यों कहिये है, ज्यों प्रदेशका एकत्व

वस्तुका स्वरूप है। त्यों ज्ञानस्वरूप है।

क्रमके दोय भेद हैं विष्कंभक्रम, प्रवाहक्रम। विष्कंभक्रम प्रदेशमें है, प्रवाहक्रम परिणाममें है। द्रव्यमें क्रमभेद नाहीं, वस्तुके ही अंग ऐसे भेद धरे है, पर अंगमें क्रमभेद है, वस्तुमें नाहीं। जैसैं नरके अंगमें क्रमभेद है नरमें नाहीं, या प्रकार जानिये। जैसैं दर्पणमें प्रकाश है, सब दर्पणमें है, तैसाही आरसीके एक प्रदेशमें है, प्रदेश आरसीमें जुदा तौ न होय, पर परमाणुमात्र प्रदेश जब कलिपए तब प्रदेशामें जाति शक्ति तौ वैसी है, पर वस्तु संपूर्ण सब प्रदेशका नाम पावै है। याही प्रकार गुण जाति शक्ति भेदतैं तौ प्रदेशमें आये, पर संपूर्ण आत्मवस्तु असंख्यप्रदेशमय है, एक-प्रदेश लोकालोकको जानै, सो ही सब प्रदेश जानै पर सब प्रदेशका एकत्वभाव वस्तु है।

कोई प्रश्न करै है, एक गुणके अनंत पर्याय हैं, एक प्रदेशमें एक गुण है तामें अनंत पर्याय कैसैं आये? ताको समाधान—एकप्रदेशमें सूक्ष्म गुण है, अरु अनंत गुण हैं ते सब सूक्ष्म हैं, यातैं सूक्ष्मगुणके सबपर्याय जातिभेद शक्तिभेद एक है, ऐसैं आये। एक गुणवस्तुका है, वस्तुमें व्या-

पक है, वस्तु सब गुण में व्यापक है, तातैं सूक्ष्म-गुण भी अपनी पर्यायकरि सब गुणमें व्यापक है, अखंडित है। एक गुण खंड-खंड पर्याय-करि जुदा जुदा व्यापक कहैं, सूक्ष्म अनंत होय एक न होय, तब द्रव्य अनंत होय, गुण द्रव्य एक है, तातैं सब प्रदेशरूप वस्तु है, तैसैं ही गुण है। गुण एक सब गुणमें अपनारूप धरै है, व्यापक है, तैसैं प्रदेश एक सब प्रदेशमें व्यापक नाहीं। एक प्रदेशका अस्तित्व एक प्रदेशमें है, दूजेका दूजेमें है। पर चेतना [की] अभिन्नतातैं प्रदेश सब अभिन्नसत्तारूप है। एक वस्तुका प्रकाश अनस्यूत अभेद है। कहनेमें प्रदेशका स्वरूप निर्णयके वास्ते भेद कह्या। पर जाति-शक्ति-सत्ता–प्रकाशादि अभेद हैं, एक गुण सूक्ष्म सब प्रदेशमें संपूर्ण अपना अस्तित्व धरै है, तिनमें संपूर्णता है, सब गुण सब सूक्ष्म संपूर्ण किये जेता प्रदेश कह्या तिसमें तिसहीका गुण सूक्ष्म न्यारा न कहिये। यों न्यारा कहैं गुण खंड होय, तातैं अभेद प्रकाश है, ताहीमें भेद, अंसकल्पना, पर अभेद है। प्रदेश अवयवका पुंज है, एक वस्तु सिद्धि करै है। इन

प्रदेशनमें सर्वज्ञ सर्वदर्शिशक्ति है। ये प्रदेश अपने यथावत स्वभावरूप होंय, तातैं तत्त्वशक्तिकों धरै है। परप्रदेशरूप न होंय, तातैं अतत्त्वशक्तिकों धरै हैं। जड़तारहित यातैं चैतन्यशक्तिको धरै हैं, इत्यादि अनंत शक्तिकों या प्रकार धरे है। प्रदेश-शक्ति अनंतमहिमाकों धरै है।

सत्तागुण

सत्ताके आधार सब द्रव्य-गुण-पर्याय हैं, तातैं सब द्रव्य गुण पर्यायके रूपकांविलास सत्ताही करै है। कोई प्रश्न करै, सत्ता तौ "है" लक्षणकों लिये है, विलास कैसैं करै है? ताको समाधान—द्रव्यका विलास "द्रव्य करै, गुणका गुण करै, पर्यायका पर्याय करै, तीनोंके विलासकों"[1] अस्ति (त्व) भाव सत्तातैं है, तातैं सत्ताही करै है। द्रव्य-गुण-पर्यायका विलास ज्ञानमें आया, ज्ञानवेदन तातैं ज्ञानही तीनोंके विलासकौं करै है। ऐसैं ही दर्शन में आये। दर्शन सब द्रव्य गुण पर्यायके रूपका विलास करै है। परिणाम सबकौं वेदि, रसास्वाद

१ इन्वर्टेट कौमाजवाली पंक्ति पाटनी प्रतिमें नहीं है।

ले है, तातैं पर्याय सबका विलास करै। याही प्रकार अनंत गुण हैं। एक एक गुण तीनों द्रव्य गुण पर्यायका विलास करै है।

भावभाव शक्ति

समस्तपदार्थका समस्त विशेष, ज्ञान जानै है, सो पीछैं जानै था, आगे जानैगा; वह शक्ति पीछैं थी सोई शक्ति भाविमें रहै है, तातैं ज्ञानमें भाव-भाव शक्ति है। ऐसैं दर्शनमें जो भाव पीछैं था सो ही भाविमें रहै है, तातैं भावभाव शक्ति दर्शनमें है। ज्ञानमें, दर्शनमें यों ही अनंतगुणमें भाव-भाव शक्ति है। सब गुणका भाव एक एक गुणमें, तातैं अपने भावतैं सबका भाव है, सब गुणके भावतैं एक गुणका भाव है, तातैं भावभावशक्ति सब गुणमें है। एक गुणमें द्रव्य पर्यायका भाव है, द्रव्य पर्यायके भावमें गुणका भाव है, तातैं भाव-भावशक्ति कहिए। एक एक भावमें अनंत भाव हैं, अनंतभावमें एक भाव है; वस्तुके सद्‌भाव प्रगटना भाव है, एक भावमें अनंतरस विलास है, विलास का प्रभाव प्रगट धरैं, वस्तुहीमें अनेक अंग वर्णन जिनदेव बतावैं हैं। वस्तुमें अनंतगुण हैं, एक-एक

गुणमें अनंतशक्ति पर्याय है, पर्यायमें सब गुण का वेदना है, वेदवेमें अविनाशी सुखरस है, वह सुखरसके पीवनेतैं चिदानंद अजर अमर होय निवसै है।

एक समयके कारण कार्यमें ३ भेद

समय समय कारणकार्यद्वारि (र) आनंदका विलास होय है, सो परिणामतैं कारण-कार्य है। पूर्व परिणाम कारण, उत्तरपरिणाम कार्यकौ करै है, सो ताके तीन भेद एकही कारण कार्यमें सधै है सो कहिये है। जैसैं षट्गुणी वृद्धि-हानि एक-समयमें सधै है, तैसैं एकवस्तु परिणाममें भेद कल्पनाद्वारकरि तीन भेद साधिये है, द्रव्यकारण-कार्य, गुणकारणकार्य, पर्यायकारणकार्य। प्रथम द्रव्यका कारण-कार्य कहिये है—

द्रव्य अपने स्वभावकरि आप ही आपकौ कारण है, आपही कार्यरूप है; अथवा गुण-पर्याय कारण है द्रव्यकौ, गुण पर्यायवान् द्रव्य [गुण पर्यय वद् द्रव्यं तत्त्वा० सू०] ऐसा सूत्रका वचन है। पूर्व परिणामयुक्त द्रव्य कारण है, उत्तर परि-

णामयुक्त द्रव्यकार्य है। अथवा सत् कारण है, द्रव्य कार्य है। अथवा 'द्रवत्वयोगात् द्रव्यं' (द्रवत्वगुण कारण है, द्रव्य कार्य है।) द्रव्यकौ कारण-कार्य द्रव्य ही में है, काहेतैं ? द्रव्य (अपने कारण-स्वभावकौं आपही परिणमकरि अपने कार्यकों आपही करै है।) द्रव्यमें जो कारण-कार्य न होय तौ कैसैं द्रव्यपणा रहै ? तातैं संसारमें जेते पदार्थ हैं तेते अपने अपने कारणकार्यकों सब करैं हैं, तातैं जीवद्रव्यका कारण-कार्यकरि जीवका सर्वस्व प्रगटै है,जो कछु है सो कारण-कार्य ही है। आगे गुणका कारणकार्य कहिये है:-

गुणकौं द्रव्य-पर्याय कारण है, गुण कार्य है, केवल द्रव्यपर्यायही कारण नहीं, गुण भी गुणकौ कारण है,गुणही कार्य है। एक सत्तागुण सब गुणकौ कारण है, सबगुण कार्य हैं। एक सूक्ष्मगुण सब गुणकौ कारण है,सबगुण कार्य हैं। एक अगुरुलघुगुण सबगुणकौ कारण है, सबगुण कार्य हैं। एक प्रदेशत्व गुण सबगुणकौ कारण है, सबगुण कार्य हैं। याही प्रकार एक एक गुण सब गुणकौ कारण हैं, सब गुण कार्य हैं। अब उसही गुणका कारण उसमें कहिये है। सत्ताका निजकारण सत्ताहीमें है, सत्ता द्रव्य-गुण-पर्यायका "है" लक्षणकौं लिये है, तातैं उत्पाद व्यय ध्रुव सत्ताका लक्षण सत्ताकौ कारण है,

सत्ता कार्य है। ऐसैं ही अगुरुलघुत्वगुण निजकारणकरि निजकार्यकौं करै है, उस अगुरुलघुत्वगुणका विकार षट्गुणी वृद्धि-हानि है, उसही वृद्धि-हानिकरि अगुरुलघु [गुणका] कार्य निपजा है, तातैं आप अगुरुलघु आपही कौ कारण है, ऐसैं ही सब गुण आप आपकौं कारण हैं, आप कार्यको आपही करै है। अन्यगुण निमित्त कारण ग्राहकनयकरि अन्य गुणके कारणतैं अन्य गुण कार्य हो है, अन्य गुण ग्राहक निरपेक्ष केवल निज-गुण ग्राहक नयकरि निज गुण निजका कारण-कार्य कौं करै है। द्रव्य विना गुण न होय, यातैं गुण-कार्यकौ द्रव्य कारण है, पर्याय न होय तौ गुणरूप कौण परिणवै ? तातैं पर्याय कारण है, गुण कार्य है, ऐसैं अनेक भेद गुणकारण-कार्यके हैं। आ[गे] पर्यायका कारण-कार्य कहिये है:—

द्रव्य गुण पर्यायका कारण है, पर्याय कार्य है, काहेतैं ? द्रव्य-विना पर्याय न होय। जैसैं समुद्र विना तरंग न होय, ऐसैं पर्यायका आधार द्रव्य है, द्रव्यहीतैं परिणति उठै है। उक्तं च—

१—आलापपद्धति

अनादिनिधने द्रव्ये स्वपर्याया प्रतिक्षणं ।
उन्मज्जंति निमज्जंति जलकल्लोलवज्जले ॥१॥

ऐसैं पर्यायका कारण द्रव्य है। आगे गुण-पर्यायका कारण कहिए है—गुणका समुदाय द्रव्य है, द्रव्य न होय गुण विना, द्रव्य विना पर्याय न होय, एक तौ यो विशेषण है, दूजा (दूसरा) गुण विना गुणपरिणति न होय; तातैं गुण पर्यायकौ कारण है। गुण परिणवै है पर्याय, तव गुणपरिणति नाम पावै है, तातैं गुण कारण है पर्याय कार्य है। पर्यायका कारण पर्यायही है। पर्यायकी सत्ता, गुण विना ही पर्यायकौं कारण है, पर्यायका सूक्ष्मत्व पर्यायको कारण है। पर्यायको वीर्य पर्यायकौ कारण है। पर्यायका प्रदेशत्व पर्यायकौ कारण है अथवा उत्पाद व्यय कारण है, काहेतैं? उत्पादव्ययसौं पर्याय जानी परै है, तातैं ये पर्यायके कारण हैं, पर्याय कार्य है। ऐसैं कार्य-कारणका भेद है, सो वस्तुका सर्व रस सर्व स्वकारण-कार्य ही है। कारण-कार्य जान्या तिनि सर्व जान्या। इस परमात्माके अनंतगुण हैं, अनंतशक्ति है, अनंत गुणकी अनंतानंत पर्याय हैं अनंत चेतना चिन्हमें अनंत अनंता अनंत सात भंग सधै हैं। या प्रका-

सात अधिक साठ भेद हैं, ते कहिये है, प्रथम च्यारि भेद श्रद्धानके हैं तिनको नाव, प्रथम परमार्थ संथव १ दूजो मुनित परमार्थ २ तीजौ यतिजन सेवा ३ चौथो कुदृष्टि परित्याग ४ ये च्यारि भेद में पहलो भेद कहिये है—सात तत्त्व हैं तिनको स्वरूप ज्ञाता चिंतवे है, चेतनालक्षण दर्शन-ज्ञानरूप उपयोग आदि अनंतशक्ति लियें अनंतगुण मंडित मेरो स्वरूप है, अनादि पर संयोगतैं मिल्यो है तौऊ मेरे स्वरूपमें ज्ञेयाकार ज्ञानउपयोग होय है, परज्ञेयरूप न होय है, अविकाररूप अखंडित ज्ञानशक्ति रहे है, ज्ञेय अवलम्ब किये है, परज्ञेय कौ निश्चयकरि न छीवै है देखताही अनदेखता है, पराचरण करताही अनकर्त्ता है, ऐसा उपयोगका प्रतीत्यभाव श्रद्धै है। अजीवादि पदार्थको हेय जानि श्रद्धान करै है। वारवार भेद ज्ञानकरि स्वरूप चिंतनकरि श्रद्धा स्वरूपकी भई, ताकौ नांव परमार्थसंस्तव कहिये। जिनागम द्रव्यसूत्रतैं अर्थ जानि ज्ञानज्योतिको अनुभौ भयो तहां मुनित परमार्थ कहिये। शुद्धस्वरूप रसास्वाद वीतराग स्वसंवेदनतैं भयो तिन विषैं प्रीति भक्ति सेवा यतिजनसेवा कहिये। परालंबी बहिरमुख मिथ्यादृष्टि-

मिथ्यामत अभिलाष न करै २ परद्वैत न इच्छै स्वरूप पवित्र ग्रहै ३ परग्लानि न करै, मिथ्याती परग्राही द्वैतकी मनसों प्रशंसा न करै ४ वचनकरि गुण न कहै ५। आगै सम्यक्तका आठ प्रभावना भेद कहै छै (हैं), तीका भेद आठ पवयणी १ धर्म कथा २ वादी ३ निमती ४ तपसी ५ विद्यावान ६ सिद्ध ७ कवि ८ सो अब कहिजे छै, सिद्धांतमें स्वरूप उपादेय कहै १ निजधर्मकथन कहै २ हठतैं द्वैत आग्रह छुडावै मिथ्यावाद मेटै ३ निमित्त-स्वरूप पायवेकौं जिनवाणी गुरु साधर्मी छै, निज विचार छै निमित्तकरि जे धर्मज्ञ छै त्याहकौ हित कहै ४। परद्वैत इच्छा मेटि निजप्रताप प्रगटै ५ विद्याकरि जिनमत प्रभाव करै, ज्ञानकरि स्वरूप-प्रभाव करै ६ वचनकरि स्वरूपानन्दीकौ हित करै, संघकी थिरता करै। स्वरूप सिद्धि है जिहसौं तिहने सिद्ध कहिजे ७। कवी स्वरूपके लियें रचना रचै, परमार्थ पावै, प्रभावना करै ८ या आठांकरि जिनधर्म स्वरूपप्रभाव बढै सो करै ये अनुभवीके लक्षण हैं।

आगै छै भावना कहे छै—मूल भावना १ द्वारभावना २ प्रतिष्ठाभावना ३ निधानभावना ४

आधार भावना ५. भाजन भावना ६. सम्यक्त्व-
स्वरूप अनुभौ सकल निजधर्ममूल शिवमूल है,
यो भावै मूल सम्यक्त जिनधर्म कल्पतरुकौ है १.
धर्मनगरमें प्रवेशते सम्यक्तद्वार है २. व्रत तपकी
स्वरूपकी प्रतिष्ठा सम्यक्तसौं है ३. अनंतसुखदेवा-
ने निधान सम्यक्त है ४. निज गुण आधार सम्य-
क है ५. सकल गुण भाजन है ६. यह भावना स्व-
रूपानन्द प्रगट करै है।

आगै सम्यक्तके पांच भूषण लिखिजे है—प्रथम
कौशल्यता १ तीर्थसेवा २ भक्ति ३ थिरता ४
प्रभावना ५। परमात्मभक्ति, परपरिणाम, पाप-
परित्याग स्वरूप, भावसंवर, शुद्धभावपोषक
क्रिया कौशल्यता कहिजे १. अनुभावी वीतराग
सत्पुरुषांकौ संग तीर्थसेवा कहिजे २. जिनसाधु
सावर्मीकी आदरताकरि महिमा बढावो भक्ति
कहिजे ३. थिरता सम्यक्तभावकौ रहना ४. पूजा
प्रभाव करिवो प्रभावना ५. ये भूषण सम्यक्तका
है। सम्यक्त लक्षण पांच, सो कौन? उपशम १
संवेग २ निर्वेद ३ अनुकंपा ४ आस्तिक्य ५. सो
कहिजे है। राग-द्वेष मोह स्वरूप मेटिवो उपशम
है १. संवेग निजधर्म जिनधर्मसों राग २. वैराग्य-

भाव निर्वेद ३ स्वदया-परदया अनुकम्पा ४ स्वरूप की जिनवचनकी प्रतीति अस्तिक्यता ५ ये लक्षण है अनुभवीका।

आगै जैनसार छह लिखजे छै, वंदना १ नमस्कार २ दान ३ अणुप्रयाण ४ आलाप ५ संलाप ६। परतीर्थ परदेव परचैत्य त्यांकी (उनकी) वंदना १ पूजा नमस्कार २ दान ३ अनुप्रयानु कहता अधिक खानपानसे इत्यादि न करै ४। अर आलाप इहै नैं कहजे, जो प्रणत सहत संभाषण सो न करै ५। गुण दोष पूछिवो वा खार भक्ति संलाप ६ सो न करै।

आगै समकितका अभंग कारण लिखजे छै– जो ये भंग कारण पाय न डिगै तीनै अभंगकारण कहिजे, तिहिका भेद छह राजा १ जनसमुदाय २ बलवान ३ देव ४ बड़ाजन पितादिक ५ माता ६ ये अभंगरूप षट् भया जाणतौ रहै, याका भयसौं निजधर्म जिनधर्म न तजै, आगे सम्यक्तका स्थान छह लिखजे छै। अस्ति जीव १ नित्य २ कर्ता ३ भोक्ता ४ अस्ति ध्रुव ५ उपाय ६ आत्मा अनुभौ सिद्ध छै, चेतनामें लीन चित्त करै। जीव अस्ति

है, केवलज्ञानसौं प्रत्यक्ष है १। द्रव्यार्थकरि नित्य है २ पुन्य पापको कर्ता है ३ भोक्ता पर है ४। मिथ्यादृष्टिमें। निश्चयनयसे न कर्ता न भोक्ता निर्वाणस्वरूप अस्ति ध्रुव है ५। व्यक्त निर्वाण अखय मुक्ति है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र उपाय है मोक्षकौं[1] ६। ए सत साठभेद सम्यक्तका, परमात्माकी प्राप्तिका उपाय है।

ज्ञाताके विचार

ज्ञाता ऐसैं विचारको करै है, ज्ञेय अवलंबन उपयोग करै है, ज्ञेयावलंबी होय है। सो ज्ञेय के अवलंबहारी शक्ति, ज्ञेयकौं अवलंबकरि तजिदे है। ज्ञेयका संबंध अस्थिर है, ज्ञेय परिणाम भी छूटै है, तातैं ज्ञेय, ज्ञेय परिणाम निजवस्तु नाहीं; ज्ञेयके अवलंबनहारी शक्तिको धरैं चेतना वस्तु है। ज्ञेय मिलैं अशुद्ध भई, पर शक्ति शुद्ध गुप्त है, जो शुद्ध है सो रहे है; अशुद्ध है सो न रहे है यातैं अशुद्ध ऊपरी मल है। शुद्ध स्वरूपकी शक्ति है जैसैं फटिकविषैं लालरंग दरसै है, फटिकका स्वभाव नाहीं, तातैं मिट जाय है, स्वभाव न जाय है।

---

१ 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः'— तत्त्वा॰ सू॰ १—१

जैसैं मयूर-मुकरंदमें पदार्थमोर दरसै; पर पदार्थ मयूर न होय, तैसैं कर्मदृष्टिमें आत्मा परस्वरूप होय भासै है; पर (परन्तु) पर न होय। जैसैं धतूर के पियेतैं दृष्टि श्वेतशंखकों पीत देखै है, पर दृष्टि विकार है, दृष्टिनाश नाहीं, तैसैं मोहकी गहलतैं परको आपा मानै है, पर आपा न होय। जैसैं कठेरैनैं चिंतामणि पाया, परख न जानी, तौ चिंतामणिका प्रभाव न गया, तैसैं अज्ञानतैं स्वरूपकी महिमा न जानी तौ स्वरूपका प्रभाव न गया। जैसैं बादलकी घटामाहिं रवि छिप्या है; पर छिप्या ही प्रकाश धरै है, रात्रिकी नाईं अंधेरा नाहीं; तैसैं आत्मा कर्म-घटामें छिप्या है; पर दर्शन-ज्ञान प्रकाश करै है, नेत्रद्वार दर्शनप्रकाश करै है और इंद्रीद्वार करै है, मनद्वार जानै है, अचेतनकी नाईं जड़ है नाहीं। ऐसैं स्वरूपको, परम गुप्त है तोऊ प्रगट ज्ञाता देखै।

जो बंधरूपसैं मुक्त हुवा चाहे सो कैसैं शुद्ध होय? जो आपकी चेतना प्रकाश शक्ति उपयोगकरि प्रगट है, ताकौं प्रतीत्यमें ल्यावै। पाणीकी तरंगकी नाईं गुडुप होय है तौऊ हो, पर दर्शन-ज्ञानमें परिणाम गुडुप करै तौ निजसमुद्रकौं मिले,

ही है। मृग भांडलीके माहि जल मानि दौरै है, एतैं ही दुखी है। ऐसैं आत्मा परकौं आपा मानै है, एता ही संसार है, न मानै मुक्त ही है। जैसैं एक[1] नारीने काठकी पूतरी बनाई अपने महलमें अलंकार वस्त्र पहराय सेजमें सुवाणि राखी, पटसौं ढांक धरी, तहां उस नारीका पति आया, उसने यह जाना मेरी नारी सयन करै है, वाकौं हेले दे, पौन (पवन) करै, वा न बोलै, खिजमत (सेवा) बहो(हु)त करी सारी रात, प्रभात भया तब इसने जानी, काठकी है, तब पछिताया, मैं झूठी सेवा करी। तैसैं परअचेतनकी सेव आत्मा वृथा करै है, ज्ञान भए जानै है- यह जड़ है, तब याकौ सनेह त्यागै है, तब स्वरूपानंदी होय सुख पावै है। उपयोगकी उठनि सदा होय है सो तिसकौ संभारै, परमें उपयोग न दे, आत्माका उपयोग जीधैको (जिधरको) लागै तिसरूप होय है; तातैं उपयोगकरि अपने द्रव्य-गुण-पर्याय विचार, थिरता, विश्राम, आचरण, स्वरूपका करना। अनंतगुणमें उपयोग लगावना। मनद्वार उपयोग चंचल है, सो चंचलता रोकैं चिदानंद उघरै है—ज्ञाननयन

1 आत्मावलोकन में यही दृष्टान्त है।

है, तातैं तिसकौं तुम याद कहांतैं राखौ ? अवरु जो अब तिस स्वभावकौ देखौ, अरु जानहु, सेवा करहु, तब आपही तुमको याद भी रहेगा । तुम सुखी होहुगे । अजाची महिमा लहोगे । प्रभु होहुगे । ये जु हैं षट्द्रव्य तिनमें चेतन राजा है, तिन पांच द्रव्यमें तौ तुम मत अटकौ तुम्हारी महिमा बहुत ऊँची है । नौ कर्म बसंती बसै है । तुमहीसौं बसतीसी लागै है । अरु आठकर्म देखो, ये भी पुद्गल द्रव्यजाति है, अपना अंग नांही । जो पुद्गलीक जाति संज्ञा है तिनही तिनही जातिकी संज्ञा, चेतन परिणाममें धरी ते स्वभाव नांही, सो पर कलित भाव हैं; तातैं निज चेतना, झूठा स्वांग धर्या है । सो परभाव स्वांग दूर करौ, तिसके दूर करतें ही प्रत्यक्ष साक्षात् स्वभावसन्मुख स्थिरी होहुगे, विश्राम पावहुगे । वचनातीत महिमा पावहुगे । भी (फिर भी) पर नीच परिणाम धरोगे तोऊ चेतनराजा ठीक किया है, नीच संबन्धमें न ठगावहुगे । बढते-बढने परमपद पावहुगे । तिहुंलोकमें दुहाई अनावहुगे । ऐसैं गुरु वचन सुनि ज्ञाता अपनी वचनशक्ति गहै, जहां-जहां देखै तहां जड़-

२ यह प्रकरण आत्मावलोकन में बहुत विस्तारसे दिया है ।

ा नमूना है। ज्ञानज्योति अनूप अपणा पद है, अनादि विभावका विनाश, स्वरूपप्रकाशनैं हो है। अपने स्वरूपतैं दर्शन-ज्ञान प्रकाश उठै है, सो पर पदकों देख जानि अशुद्ध होय है। जहाँ इतना विशेष है, जहाँ रागादि परिणामरूप देखना जानना है तहाँ विशेष अशुद्धता है। सामान्य पद दशा-करि देखै जानै है तहाँ सामान्य अशुद्धता है। एकोदेश उपयोगकी संभार चउथेवालेके (चतुर्थगुणस्थान वर्तीके) भई है तहां एकोदेश शुद्धता जाननी।

अब पंचमगुणस्थानमें अप्रत्याख्यान संबंधी रागादि गये, तैंती अशुद्धता गई, थिरता चढती भई, तब एकदेश थिरता भयें एकदेश संयम नाम पाया। छठे गुणस्थानमें प्रत्याख्यानका अभाव भया, थिरता विशेष भई। सकल आकुलताका कारण सकल पाप है ताका अभाव हुआ, पर गौणता रूप अशुभ ऐसा भया, जो पापबंध दुर्गतिका कारण न होय, शुभ मुख्य है। शुद्ध गौण है, पर ऐसी मुख्यता कौं दौरे है मुख्यसा ही काज करै है, गोणही बलिष्ट है।

छटेके भेदज्ञान विचारमें सातमा शुद्धोपयोग

रूप सिताब (जल्दी) होय है। शुभोपयोगमें गर्भित शुद्ध है, तातैं सातमाका साधक छठा है। क्रिया उपदेश होय है, पर विशेष थिरतातैं सकलविरति संयम नाम पाया है।

मनकी पांच भूमिका

आगे सातमासौं लेयकरि वीतराग निर्विकल्पसमाधि बढ़ती गई, निःप्रमाददशा भई, अपने स्वभावका रसास्वाद मुख्य हुवा बढ़ता-बढ़ता गुणस्थान माफिक बढ्या, परिणाम मनके द्वारकरि होय वर्तै है, सो मनकी पांच भूमिका हैं। क्षिप्त, विक्षिप्त, मूढ़, चिंतानिरोध, एकाग्र, इन भूमिका में मन (की) फिरणि है। इनका ब्योरा कहिये है। क्षिप्त तासों कहिए, जहां विषय-कषायनमें व्याप्त हुआ रंजकरूप भावमें सर्वस्व पेख्या है। विक्षिप्त कहिये, चिंताकी आकुलताकरि कछु विचार उपजि सकै नाहीं। मूढ़ सो कहिये, जहां हितको अहित मानै अहितको हित मानै, देवको कुदेव मानै कुदेवको देव मानैं, धर्मको अधर्म मानै अधर्मको धर्म मानै, परकों आप मानै आपकौं न जानै, विवेकरहित मूढ़मन कहिए। चिंतानिरोध जो कहिये

एकाग्रताकों कहिये, ब्रह्मविषै थिरता भई स्वरूप रूप परिणया एकत्वध्यान भया सो स्वरूपएकाग्रता है। परविषैं एकाग्रपणा तौ होय है, आकुलता है अनेक विकल्पका मूल दुख बाधा हेतु है तातैं एकाग्र न कहिए, स्वरूपस्थिति एकाग्र यहाँ जाणना। परविषैं बन्धका मूल है। स्वरूपसाधक यह है जो आपमें एकाग्रचिंता निरोधकरि पर में भी ऐसा लगै है तहां वैसा ही क्षुभै है, आन चिंता न रहे है। सामान्यरूप पांचों संसार अवस्थामें स्नेहयुक्त लगाइये तौ संसारकौ कारण है।

समाधिका वर्णन

विशेष विचारमें धर्म ग्राहक नयमें चिंतानिरोध, एकाग्र, दोय भूमिका धर्मध्यान शुक्लध्यानकौ कारण है, समाधिकौं साधै है ताकी साखि-श्लोक–

साम्यं स्वास्थ्यं समाधिश्च योगश्चेतोनिरोधनं।
शुद्धोपयोगमित्येते भवंत्येकार्थवाचकाः ॥ ६४ ॥

चिंतानिरोध, एकाग्रतातैं समाधि होय है सो ही लिखिये है। समाधिं कहिये रागादि विकल्प-

---

१ एकत्व सप्ततिका, ६४ पद्मनंद्याचार्य कृतं।
२ सोऽयं समरसीभावस्तदेकीकरणं स्मृत।
एतदेव समाधिः स्याल्लोकद्वयफलप्रदः॥

तत्वानुशासन १३७

रहित स्वरूपविषैं निर्विघ्नथिरताकरि वस्तुरसास्वादकरि स्वरूप अनुभौ स्वसंवेदन ज्ञानकरि हूवौ तिहिकौ समाधि कहिये।

सो केईकतौ समाधि ईनै कहे छै। सास-उसास पौन छै, तिहिनै अंतरमें पूरे तिहिने पूरक कहिये। पाछै कुंभकी नाई भरै. भरिकरि थांभै, तिहिनै कुंभक कहिये। पाछै शनैः शनैः रेचै, तिहिने रेचक कहिये। पांच घड़ीकौ कुंभक करै तिहिने धारणा कहिये, साठ घड़ीकौ कुंभक करै तिहिने ध्यान कहिये। आधेकौ कुंभक करै तिहिकौ समाधि कहिये, सो या कारण समाधि है, काहेतैं ? यातैं मनोजय होय है, मनके जय कियेतैं राग-द्वेष-मोह मिटै है, राग-द्वेष-मोह मिटैं समाधि लागै। निज गुणरत्न, थिरमन होय तौ पाइये, यातैं कारण है। केई न्यायवादी न्यायके बलकरि छहोंमतका निर्णय करैं हैं, तहां समाधि नहीं, विकल्प हेतु है।

यातैं जैनमतमें अरहंतदेव, जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष सप्त तत्त्व कहिये, प्रत्यक्ष-परोक्ष दोय प्रमाण हैं। नित्यानित्यादि अनेकांतवाद, सम्यक्दर्शन ज्ञान चारित्र[चारित्राणि]

मोक्षमार्गः[तत्त्वा० १-१] कृतस्नकर्मक्षय मोक्षं।

नैयायकमतमें जटाधारी त्याहकैं ईश्वरदेव, प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णयवाद, जल्प, वितंडावाद, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रहस्थानानि षोडशतत्त्व कहिये। प्रत्यक्ष, उपमा, अनुमान, आगम, च्यारि प्रमाण कहिये। नित्यादि एकांतवाद दुःख जन्मप्रवृत्ति दोष मिथ्याज्ञानकौ उत्तर, उत्तरनाशमोक्षमार्गः। षडींद्रिय षट्विषय, षट् बुद्धि, शरीर सुख दुःख, इकवीस दुखकौ अत्यन्त उच्छेद मोक्ष मानै है।

आगे बो (बौद्ध) मत कहिजे है। बौद्ध रक्तवस्त्रधारी त्याहके मतमें, बुद्धदेव दुखसमुदायनिरोध मोक्षमार्ग, एतत्त्व च्यारि प्रत्यक्ष, अनुमान, दोय प्रमाण, क्षणिक एकांतवाद सर्वक्षणिक सर्वनैरात्म्यवासना मोक्षमार्गः। वासना क्लेशको नाश, ज्ञानकौ नाश मोक्षः।

आगे शिवमत कहै है, शिवमतमें शिवदेव

१ आत्यंतिकः स्वहेतोर्यो विश्लेषो जीवकर्मणः।
स मोक्षः फलमेतस्य ज्ञानाद्याः क्षायिका गुणाः॥२३०॥
—तत्त्वानुशासन

द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय ये षट्तत्त्व, प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, तीन प्रमाणवाद। मोक्षमार्ग नैयायककी नांई बुद्धि-सुख-दुःख-इच्छा-द्वेष-प्रयत्न-धर्मा-धर्म संस्कार रूप नवकौ अत्यन्त नाश मोक्षः।

आगे जैमनीय मत कहै छै—जैमनीय भट्टमतमें देव नहीं प्रेरणा लक्षण धर्मतत्त्व प्रत्यक्ष अनुमान उपमान आगम अर्थापत्ति अभाव षट्प्रमाण, नित्य एकांतवाद वेदविहितआचरण मोक्षमार्गः नित्य अतिशयनै लियें सुखकी व्यक्तता मोक्षः।

आगे सांख्यमत कहै छै—सांख्यमतमें बहुत भेद, केई केई ईश्वरदेव, केई कपिलने मानै, पच्चीस तत्त्वे[1]—राजस-तामस-सात्विक अवस्था प्रकृतिः। प्रकृतितैं महत्, महत्तैं अहंकार, अहंकारतैं पांच तन्मात्रा, एकादशइंद्रिय तिहविषैं स्पर्शतन्मात्राद्वायुः, शब्दतन्मात्रात् आकाशं, रूपतन्मात्रातैं तेज, गंधतन्मात्रातैं पृथ्वी, रसतन्मात्रा

---

१ प्रकृतेर्महान् ततोऽहंकारस्तस्माद्गणश्च षोडशकः।
तस्मादपि षोडशकात्पंचभ्यः पंच भूतानि ॥ १ ॥
—सांख्यकारिका

तैं आयः, स्पर्शरसघ्राणः चक्षु श्रोत्राणि पंचबुद्धि इंद्रिय,पांच कर्मइंद्रिय-वाक्-पाणि-पाद-पायु-पस्थानि, एकादशमनः अमूर्तिश्चैतन्यरूपी कर्ता भोक्ता च पुरुषः, मूलप्रकृति अविकृतिः महदाद्या प्रकृति-विकृतयः सप्त षडशः नविकार न प्रकृति विकृति पंगवत् प्रकृति पुरुषयोर्योगः प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द तीन प्रमाण नित्य एकांतवाद पंचविंशति-तत्त्वज्ञानं मोक्षमार्गः। प्रकृति पुरुषका विवेक दिखावातैं प्रकृतिविषैं पुरुषको रहवो सो मोक्षः।

सातवौं नास्ति मतीविषैं देव नहीं, पुन्य-पाप नहीं, मोक्ष नहीं। पृथ्वी, अप, तेज, वायु च्यारि भूत मानैं, प्रत्यक्ष एक प्रमाण, च्यारिभूतके समवाय [तैं] चैतन्य शक्ति उपजै, ज्यों मदसामग्री समवायसौं मदशक्ति होय है तैसैं अदृश्य सुख-त्याग, दृश्य सुखभोग सो ही पुरुषार्थ।

ये ही सारा भेद निर्णय करै पर (ये सब) समाधि नांही, समाधिके भेद तेरा ते कहिये हैं— प्रथम लय १ प्रसंज्ञात् २ वितर्कानुगत ३ विचारानुगत ४ आनंदानुगत ५ अस्मिदानुगत ६ निर्वित-

१ अमूर्तश्चेतनो भोगी नित्यः सर्वगतोऽक्रियः।
अकर्ता निर्गुणः सूक्ष्म आत्मा कपिलदर्शने ॥

र्कानुगत ७ निर्विचारानुगत ८ निरानंदानुगत ९ निरास्मिदानुगत १० विवेकख्याति ११ धर्ममेघ १२ असंप्रज्ञात् १३ ये तेरह ही समाधिके भेद हैं उनमें असंप्रज्ञातके भेद दोय—एक प्रकृतिलय दूजा पुरुषलय।

लयसमाधि

प्रथम लयसमाधि कहियेहै—लय कहिये परिणाम मनकी लीनता, निजवस्तुविषैं परिणाम वर्तैं, राग-द्वेष-मोह मेटि दर्शन-ज्ञान अपना स्वरूपनै प्रतीतिमें अनुभवैं, जैसै देहमें आपकी बुद्धि थी तैसैं आतममें बुद्धि धरी, वा बुद्धि स्वरूपमेंतैं न निकसै जबताईं, तबताईं लीन निजमें समाधि कहिये। लयका भेद तीन, शब्द, अर्थ, ज्ञान; लयशब्द भया, निजमें परिणामलीन अर्थभया, शब्द-अर्थका जानपणा ज्ञान भया। तीनों भेद लयसमाधिके हैं, शब्दागमतैं अर्थागम, अर्थागमतैं ज्ञानागम। श्री जिनागममें कह्या है।

कोई कहे शब्द क्यों कहा ? ताका समाधान—शब्दसों शब्दांतर शुक्ल ध्यानके भेदमें ल्याया है या रीतिकरि जानियौं। जहाँ द्रव्य-गुण-पर्यायके

विचारनैं वस्तुमें लीन होना, ज्ञानमें परिणाम आया, तहां ही लीन भया, दर्शनमें आया तहां ही लीन भया। निजमें विश्राम आचरण थिरना ज्ञायकता समाधि लयको विकल्पभेद मेटि वरत्या (वर्त्या) है। जे जे इंद्रीविषय परिणामानैं इंद्रिय उपयोग नाम धरऱ्या था, संकल्प-विकल्परूप मन उपयोग नाम पाया था, ते उपयोगे छूटैं बुद्धिद्वार ज्ञान उपयोग उपजै। सो ज्ञानपणो बुद्धिसौं न्यारो। ज्ञान, ज्ञान परिणतिकरि ज्ञानको वेदै, आनन्दको पावै, लीन भया स्वरूपमें तादात्म्य होय है। जहां-जहां परिणाम विचरैं तहां-तहां श्रद्धा करे लीन होय, तातैं द्रव्य-गुणमें परिणामविचरैं जब जहां श्रद्धा करै सो लीन होय लयसमाधितें कहिये।

असंज्ञातसमाधि

आगे अ(सं)ज्ञातसमाधिका भेद कहिये है—सम्यक्को जानै उपयोगविषै ऐसाभाव भावै, चेतनाका प्रकाश अनंत है, पर दर्शन-ज्ञान-चारित्र मुख्य है। दृश्यशक्ति मेरी निर्विकल्प उठै है, ज्ञानशक्ति विशेष त्र परिणामकरि वस्तुको

अवलंब वेदि विश्रामकरि आचरथिरताको धरै है। आप अपने स्वभावकर्मकोकरि कर्ता होय, स्वभाव कर्म होय, निज परिणतिकरि आपकौं आप साधै, आपकी परिणति आपकौं सौंपै। आपमें आप आपतैं थापै (स्थापितकरै)। आपके भावका आप आधार, आपका द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव नीकैं विचारि थिरताकरि रागादिविकार न आवने दे। ज्यों-ज्यों उपयोगकी जानि वर्ते त्यों-त्यों ध्यानकी थिरतामें आनंद बढ़ै, समाधि सुख होय। वीतराग परमानन्द समरसीभाव स्वसंवेदनसुखसमाधि कहिये। द्रव्य द्रवीभाव, गुणलक्षण भाव, परजाय परिणमन लक्षणकरि वेदनाका भाव, वस्तुरसका सर्वस्व जनावनाभाव, इनकौं सम्यक्प्रकार जानि समाधि सिद्ध करै, ताकौं प्रसंज्ञातसमाधि कहिये। यामें भी तीन भेद हैं, प्रसंज्ञात शब्द, अर्थ, याको शब्द जो सम्यग्ज्ञान भाव इनकौ जानपणौ सो ज्ञान, ये तीनो भेद यामें जानने। जाननहारेकौ जानि मानि मन महा तद्रूपकरि समाधि धारिए ताकौं प्रसंज्ञात कहिये। आगैः—

वितर्कानुगतसमाधि कहिये है।

वितर्कश्रुत द्रव्यश्रुतकरि विचार करिये। अर्थमें मन धारणा भावश्रुत कहिए। वीतराग निर्विकल्प स्वसंवेदन समरसीभाव उत्पन्न आनंद भावश्रुत है, कैसैं? सो कहिये है-भावश्रुत अर्थमें भाव तहाँ अर्थ द्रव्यश्रुतका ऐसा जो जहां द्रव्य श्रुतमें वर्णन है उपादेय वस्तुका, तहाँ अनूपम आनंदघन चिदात्मा अनंत चैतन्य चिन्हका अनुभवरसास्वाद बनाया है। मनइंद्रियद्वार, चेतनाविकार अनादि वरतै था, सो शुभ-अशुभनैं छुडाय, श्रुतविचारतैं ज्ञानादि उपयोगनकी प्रवृत्तितैं पिछान्या स्वरूप अपना; जैसैं दीपकके च्यारि पड़दे थे,[1] तिनमें तीन पड़दे दूर भये, प्रकाश पिछान्या दीपक है, अवश्य है। प्रकाशका अनुभव भया। चउथा पड़दा जायगा तब कृत्कृत्य परमात्मा होय निवरैगा अनुभौप्रकाश जातिका वोही (वही) है अन्य नाहीं। तैसैं तीन चउकरी कषायकी गई तब चेतनप्रकाश स्वजाति ज्योतिका अनुभौ निजवेदनतैं ऐसा भया।

---

१ पाटनीजोकी प्रतिमें 'च्यारि पड़देके' स्थानमें 'पांच पड़दे थे' ऐसा पाठ पाया जाता है।

तब चेतनाप्रकाशका अनुभौ ऐसा भया, परमात्मा भाव आनंद इस भावश्रुत आनंदमें प्रतीतिरूप मानूं संपूर्ण पाया है।

कोई वितर्कना ऐसी करै है। ज्ञान विशेष लक्षण अवयव जाननहारा है, दर्शन सामान्य-विशेषरूपपदार्थकौं निर्विकल्प सत्तामात्र अवलोकनरूप है, सो ज्ञान-दर्शनकौं जानै तब तहां ज्ञानमें सामान्य अवलोकन कैसैं भई ? अर दर्शन-ज्ञानकौं भी देखै है, ज्ञान-दर्शनकों जानै है, सो दर्शनसामान्य है, सामान्यकौं जानता सामान्यका ज्ञान भया। तब तहां विशेष जानना कैसैं भया ? ताकौ समाधान—चिद्प्रकाशमें ऐसैं सधै है। दर्शनके प्रदेश सबजानै, दर्शनका स्व-पर देखना सब जानैं, ज्ञान-दर्शनका लक्षण, संज्ञादि भेद, द्रव्य-क्षेत्रादि भेद सब जानें तातैं विशेष दर्शनका, ज्ञान जानै। अर ज्ञानकौ दर्शन कैसैं देखै ? ताकौ समाधान—ज्ञानका जानना सामान्य, स्व-पर जानना विशेष, दोनों लक्षणमय ज्ञान, संज्ञादि भेदधारी ज्ञान ताकौ निर्विकल्परूप देखै है। दर्शन यातैं सामान्य अवलोकनि भई, एक चेतनसत्तातैं दोनोंका प्रकाश भया है। सत्ता दोनोंकी एक है। ऐसा तर्क समा-

धानीकारसे भावश्रुतमें हुआ है, इस ... नाम वितर्क है, इसके अनुगत कहिये साथ सुख हुआ सो समाधि कहिये, (सो ... विलासतैं चिद्प्रकाशके, जाननके, वेदनके, अ कनके, अनुभवके किये छद्मस्थकौं होय है। ... आनंद सो समाधि ज्ञाताकै उपजै है। तीन ताहूके हैं। प्रथम वितर्क शब्द, ताका अर्थ-श्रुत वितर्कका अर्थ, अर्थका ज्ञान ताकों ज्ञान कहिये शब्दतैं अर्थ, अर्थतैं ज्ञान, ज्ञानतैं आनन्दरूप ... साधि है। ऐसैं वितर्कसमाधिका स्वरूप कह्या, ... जानना।

अब विचारानुगतसमाधि कहिये है।

विचार कहिये श्रुतका जुदा-जुदा अर्थ विचारना। श्रुतके अर्थद्वारि, स्वरूपका विचारमें, वस्तुकी थिरता, विश्राम, आचरण, ज्ञायकता, आनंद, वेदना, अनुभव, निर्विकल्प समाधि होय है सो कहिये है, अर्थ कहिये ध्येय, वस्तु द्रव्य अथवा गुण अथवा पर्याय। द्रव्य विचार अनेक प्रकार-गुण-पर्यायरूप, अथवा सत्तारूप, अथवा चेतनापुंज, यौं द्रव्यकौ विचारि प्रतीतिमें लीन होय तव समा-

धि होय है। आपा अनुभवै, केवल विचार ही न करै। गुण ज्ञानका प्रकाश ताकौ विचार कहिये, प्राप्त होय सोही ध्यान है। पर्यायकौं लीन स्वरूप में करै, द्रव्यतैं गुणमें मन ल्यावै, गुणतैं पर्यायमें ल्यावै, अथवा और प्रकार ध्येयकौं ध्यावौ, अर्थांतर कहिये। अथवा सामान्य-विशेष भेद-अभेदकरि वस्तुमैं ध्यान धरि सिद्धि करै, सो अर्थसौं अर्थांतर कहिये। शब्द कहिये वचन, एक-द्रव्यवचन दूजो भाववचन. यहां भाववचन लेना। भाव श्रुत वस्तुके गुणमें लीनता। भाववचनमें गुण विचारद्वार जो थो, फेरि और गुणमें और विचार न करि थिरताकरि आनन्द होय है। और और विचार वस्तुका पायवाका (प्राप्तकरनेका) शब्द द्वारकरि अंतरंगमें होय सो शब्दांतर कहिये। द्रव्य हूं, गुणज्ञान हूं, दर्शन हूं, वीर्य हूं, उपयोगमें ऐसी जानि अहं कहिये आपौ आपना पदमें द्रव्य-गुण-द्वारकरि 'अहं'ता शब्द कल्पनाकरि, प्रतीत्य स्वपद की स्थापि, स्वरूपाचरणकरि आनंदकंदमें सुख होय, सो समाधि वचन जोग भावका सौं, गुण-स्मरण भयौ। विचारताई वचन थो विचार छूट्यौ मन ही लीनतामें रहि गयौ। वचनयोगतें छूटि

मनोयोगमें आयौ, सो योगसे योगांतर कहिये। विचार शब्द, विचारको अर्थ ध्येय वस्तु, ध्येयवस्तुका विचारनें जानैं सो ज्ञान, भिन्न भेद लगावना। अथवा उपयोग जो विचारमें आवै, ती उपयोगमें परिणाम थिरता सोई ध्यान, तीसौं उपज्यों आनंद ती (तिस) में लीनता, वीतराग निर्विकल्प समाधि, तीको नाव विचारानुगत समाधि कहिये।

आगे आनंदानुगत समाधि कहिये है—

ज्ञानकरि निजस्वरूपनै जानैं, जानता आनंद होय, सो ज्ञानानंद; दर्शनकरि देखता निजपदनै आनंद होय, दर्शनानन्द; निजस्वरूपमें परिणमता आनंद होय, सोचारित्रानंद; आनन्दका वेदवालो सहजही आपणों अपने-अपने दर्शन-ज्ञानमें परिणति रहै, तव आनन्द। जानना ज्ञानका ज्ञान करै, दर्शनको देखै, वेदनहारेकौ वेदै, आनंद होय चेतना प्रकाशका। आप आपकौं वेदि, अनुभवमें सहजचिदानंद स्वरूपका आनंद होय, सो आनंदका सुखमें समाधिका स्वरूप है; वेदि वेदि वस्तुकौ ध्यानमें आनंद होय है, आनंदकी धारणाधरि थिर रहै, आनंदानुगतसमाधि कहिए। जीवकर्म अनादिसंवंध वंधानकरि एकत्वसी दशा

अव्यापकमें व्यापककरि होय रही है, ताकौं भेद-ज्ञानबुद्धिकरि न्यारा-न्यारा जीव-पुद्गलकौं करै, जानै, नौकर्म द्रव्यकर्म वर्गना जड़ मूर्तीक अर मेरा जाननरूप ज्ञान उपयोगता लक्षणकरि न्यारे न्यारे प्रतीतिमें जानै, जहाँ स्वरूप मग्नता भई, ता (उस) स्वरूपमग्नता के होते ही आनंद भया। आनंद शब्द, आनंद शब्दका आनंद अर्थ। आनंद शब्दकौं वा आनंद अर्थकौं जानैं सो ज्ञान ये तीन भेद आनंदानुगतसमाधिमें लगाइये। जहाँ आनंदानुगत समाधि है तहां सुखका समूह है।

आगे अस्मिदानुगत समाधि कहिये है

परपदकौं आपा मानि अनादितैं जन्मादि दुख सहे, पर (परन्तु)एक अस्मिदानुगतसमाधि न पाई, ताके दूर करिवेकौं यह समाधि श्रीगुरुदेव कहै हैं- 'अहं ब्रह्मोऽस्मि' [मैं ब्रह्म हूं] शुद्ध चैतन्यमय परम ज्योति अहं अस्मि दर्शन-ज्ञान प्रकाश जीवका, जीव सदा प्रकाशै। संसारमें शुद्धपरमात्माकै शुद्ध दर्शन-ज्ञान अंतर आत्माकै एकोदेश शुद्धदर्शन-ज्ञान; दर्शन-ज्ञान प्रकाशज्ञेयकौं देखै जानैं, सो शक्ति शुद्ध है तामें ऐसे भाव करै है, यह दर्शन-ज्ञान

आगे निर्वितर्कानुगतसमाधि कहिये है

अभेद निश्चल स्वरूपभाव, द्रव्यमें वा गुणमें जहाँ वितर्कना नाहीं, निश्चलतामें निर्विकल्प निर्भेद भावना। एकाग्र स्वस्थिर स्वपदमें लीनता तहां निर्वितर्कसमाधि कहिए। निर्वितर्क शब्द, निर्वितर्क तर्करहित स्वपदलीनता अर्थ, याको ज्ञान सो ज्ञान, ये तीन भेद यामें भी लगावने।

आगे निर्विचारानुगतसमाधि कहिये है

अभेद स्वादमें एकत्व अवस्था जानी, तहां विचार नहीं, निश्चल स्वरूप भावनाकी वृत्ति भई। द्रव्यमें है तौ निश्चल, गुण-भावना है, तौ निश्चल, पर्यायवृत्ति निश्चल, रागादि विकार मूल सौं गये सहजानंद समाधि प्रगटी; निजविश्राम पाया, विशुद्धसौं विशुद्ध होत चल्या, थिरता लही, निर्विकल्प दशा भई, अर्थसौं अर्थांतर, शब्दसौं शब्दांतर, जोगसौं जोगांतर, विचार मिट्या, भेद विचार विकल्पनैं छुट्या, परमातम-दशाके नजीक आया, निर्विचारसमाधि कहिये। निर्विचारशब्द, विचाररहित अर्थ, जानपणौं ज्ञान, ये तीन भेद लगावने।

आगे निरआनंदानुगत समाधि कहिए है

संसार आनंद सब छुटया, इंद्रितजनित विषय-वल्लभदशा गई। विकल्प-विचारतैं आनंद था सो मिथ्या जान्या, पर मिश्रित आनंद आवै था सो गया, सहजानंद प्रगटया। परम पदवीकी नजीक भूमिकापर आरूढ़ भया। जहाँपर विभाव ज्यों मिटया त्यौं ऐसा जान्या, यह मुक्तिके द्वारका प्रवेश नजीक है, मुक्तिवधूसौं सम्बंधका अविघ्न नजीक (समीप) अतींद्रिय भोग हवने (होने) को जान्या, यह निरानंदानुगतसमाधि कहिये। निरा-नंदशब्द, पर आनंदरहित अर्थ, जानना ज्ञान, ये तीन भेद यामें भी लगावने।

आगे निरअस्मिदानुगतसमाधि कहिये है

ब्रह्म अहं अस्मि [ब्रह्म मैं हूँ] यह 'अस्मि' भाव था, अब अस्मि ऐसाभाव भी दूर भया, अत्यंत-विकार मिटया, 'अस्मि' मैं मानी थी, सो भी मिटी। निजपदही का खेल है, पर केवल न भया, परम साधक है पर साध्यसौं भेंट भई, ऐसी भई मन

गल गया, स्वरूपमें आपाही आपा स्वसंवेदकरि जान्या; पर (परंतु) परमात्माकी दशा नजीकसौं नजीक है। परम विवेक होने कौं.......... सोपान है। मान विकारगया, विमल चारित्रका खेल भया, मनकी ममता मिटी, स्वरूपमें ऐसैं रल-मिल एक-मेक हुआ, सो वह आनंद केवलीगम्य है. जहाँ समाधिमें सुखकी कल्लौल उठै है, दुखउपाधि मिट गई. आनंद-घरकौं पहुँचा, राज्य करणा रह्या है, सो नजीक (समीप) कलशाभिषेक राज्यका होयगा। केवलज्ञान राज्यमुकुट किनारे धर्‍या है, समय नजीक है, सिर पर अबही केवल मुकट धरैगा, यह निरअस्मिदानुगत समाधि है, शब्द, अर्थ, ज्ञान, ये तीनों यामें भी लगावने।

आगे विवेकख्यातिसमाधि कहिए है

विवेक कहिये प्रकृति,-पुरुषकौ विवेचन कहिये जुदो-जुदो भेद जाननौ, और भेद मिट्या, शुद्ध चिदपरिणति चैतन्यपुरुष ज्ञानमें दोनोंकी प्रतीति-विवेक हूवो; चिदपरिणति वस्तु, वस्तुका अनंत-गुण वेदनहारी छै, उत्पाद-व्यय करै छै, षट्गुणी वृद्धि- हानि लक्षण छै, वस्तुवेदि आनंद उपजावै

है (है)। जैसैं समुद्रमें तरंग उपजै समुद्र भावकौं जनावै, तैसैं स्वरूपने जनावै। सकल सर्वस्व परिणति सो प्रकृति कहिए, पुरुष कहिए परमात्मा, तीसौं (उससे) प्रकृति उपजै, जैसैं समुद्रसौं तरंग उपजै, अनंतगुणधाम, चिदानंद, परमेश्वर पुरुष कहिये। तिन दोनिनकौं ज्ञानमें जानपणौ भयो पर प्रत्यक्ष न भयो, वेद्य वेदकमें प्रत्यक्ष है, पर सम्पूर्ण केवलज्ञानमें प्रत्यक्ष नाहीं, यातैं साधक है, परमात्म थोरेही कालमें ह्वैगो (होयगा)। याकौं विवेकख्यातिसमाधि कहिये। शब्द, अर्थ, ज्ञानके तीन भेद यामें भी लगावने।

आगे धर्ममेघसमाधि कहिए है—

धर्म कहिये अनंतगुण, अथवा निजधर्म, उपयोग ताकी विशुद्धता वढी, मेघकी नांही (भाँति), जैसैं मेघ वरषै तैसैं उपयोगमें आनंद वढ्यौ, विशुद्धता वढी। अनंतगुण चारित्र उपयोगमें शुद्ध-प्रतीति वेदना भई। केवलज्ञानमें लैनें, तहाँ तौ अनंतगुण व्यक्त भये। ज्ञानउपयोगमें चारित्र शुद्ध होय, तहाँ केवलज्ञान न भी होय। वारमे [में] चारित्र शुद्ध तौ है पर केवलज्ञान नहीं, वारमें (वा-

रहवें गुणस्थानमें) यथाख्यात [चारित्र] है। तेरमें चौदहमें परमयथाख्यात है, तातैं चारित्रकी अपेक्षा धर्ममेघसमाधि वारमें (वारहवें गुणस्थानमें) भई। केवलमें व्यक्त है, तातैं उ (व) हां साधक समाधन कहिये, यहां साधक है, वारमेंमें अंतरात्मा है। यह धर्ममेघ समाधिकहिये। शब्द, अर्थ, ज्ञान ये तीन भेद यामें भी लगावने।

आगे असंप्रज्ञात समाधि तरमी कहिए है।

असंप्रज्ञात कहिए परवेदना नहीं, निजहीकौं वेदै। जानै, परका विस्मरण है, निज अवलोकन है, वारमेंके अंत समयताई तौ चारित्रकरि परवेदना मिटी, काहैनैं? मोहका अभाव भया। तेरवेमें ज्ञान केवल अद्वैत भया। तहां ज्ञानमें निश्चयकरि परका जानपणा नहीं, व्यौ (व्यव)हारकरि लोकालोक प्रतिबिंबित भए, तातैं ऐसैं कहिये। जातैं यह समाधि चारित्र विवक्षामें वारमेंके अंत है, केवलमें व्यक्त है, तहां साधक अवस्था नहीं, प्रगट परमात्मा है। यह असंप्रज्ञात समाधिका भेद जानना। उक्त ज्ञानादि तीन भेद साधक अवस्था में यामें भी लगावने।

अंतिम निवेदन

यह तेरा भेद समाधिके हैं, परमात्माके पायबेके साधक हैं, तातैं इस ग्रंथमें परमात्माका वर्णन किया, पीछैं उपाय परमात्मा पायबेका दिखाया। जे परमात्माकौ अनुभौ (भव) कियो चाहैं हैं, ते या ग्रंथकौं वार वार विचारौ यह ग्रंथ दीपचन्द साधर्मी कियो है, वास सांगानेर थौ, आंबेरमें आए, तब यह ग्रंथ कियौ । संवत् सतरासै गुण्यासी १७७९ मिति फाल्गुन वदि पंचमीकौं यह ग्रन्थ पूरण कियौ। संतजन याकौ अभ्यास करियौ ।

दोहा—देव परम मंगल करौ, परम महासुखदाय ।
सेवत शिवपद पाइये, हे त्रिभुवनके राय ॥ १ ॥

इति श्री साधर्मी शाह-दीपचन्द्र, कासलीवाल कृतं चिद्विलासनाम अध्यात्मग्रंथ संपूर्णम् ॥

२ सोऽयं समरसीभावस्तदेकी करणं स्मृतं ।
एतदेव समाधिः स्याल्लोकद्वय फलप्रदः ॥

—तत्वानुशासन